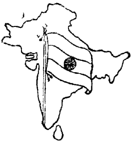
धर्म

आश्विन २००९

वर्ष ३३ अंक १०



अक्टूबर १९५२

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिक धर्म

सहसंपादक
श्री महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु. वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वेदोंकी संहिताएँ

	मू.	डा. व्य.
(१) ऋग्वेद (इसमें सर्वानुक्रम, देवतासूची, ऋषिसूची, मंत्रसूची आदि भी है।)	१०	१॥
(२) यजुर्वेद (वाजसनेयी-संहिता)	३	॥
(३) ,, काण्व-संहिता	४	।।।
(४) ,, मैत्रायणी-संहिता	६	१
(५) ,, काठक-संहिता	६	१
(६) ,, सर्वानुक्रम सूत्र (वाजस०)	१॥	॥
(७) ,, वा० सं० पादसूची	१॥	॥
(८) ऋग्वेद मंत्रसूची	२	॥

सामगान

सामवेद कौथुम शाखीय

ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	मू.	डा. व्य.
प्रथमः तथा द्वितीयो भागः	६	१
प्रकृति गान (गान भाग)	५	॥

दैवत संहिता

दैवत संहिता प्रथम विभाग	६	१॥

१ अग्नि देवता मंत्र २४४३ पृ. सं. ३४६
२ इन्द्र देवता ,, ३३६३ ,, ३७६
३ सोम देवता ,, १२६१ ,, १५०
४ मरुद्देवता ,, ४६४ ,, ७२

दैवत संहिता तृतीय भाग	६	॥।

(इस तृतीय भागमें कुल १२८ देवता हैं और मंत्र संख्या ३७५८ है।)

हिंदी पुस्तकें

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

१ से १८ ऋषिका दर्शन (एक जिल्द)
(१) मधुच्छन्दा, (२) मेधातिथि, (३) शुनःशेप (४) हिरण्यस्तूप, (५) कण्व, (६) सव्य, (७) नोधा, (८) पराशर, (९) गोतम, (१०) कुत्स, (११) त्रित, (१२) संवनन, (१३) हिरण्यगर्भ, (१४) नारायण, (१५) बृहस्पति, (१६) वागाम्भृणी, (१७) विश्वकर्मा, (१८) सप्त ऋषि.रु २१॥, १॥]
(१९) वशिष्ठ ऋषिका दर्शन, ७ रु.) डा व्य १॥

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

	मू.	डा. व्य.
१ प्रथम अध्याय श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१॥	।=
२ ३० वा ,, मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२	।≡
३ ३२ ,, एक ईश्वरकी उपासना	१॥	।=
४ ३६ ,, सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	१॥	।=
५ ४० ,, ईशोपनिषद्	२	।=

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

काण्ड १–५	८ रु.	१॥
,, ६–१०	८	१॥
,, ११–१८	१०	१

उपनिषद् ग्रंथमाला

	मू.	डा. व्य
१ ईशोपनिषद्	२	॥
२ केन उपनिषद्	१॥	॥
३ कठ उपनिषद्	१॥	॥
४ प्रश्न उपनिषद्	१॥	॥
५ मुण्डक उपनिषद्	१॥	॥
६ माण्डूक्य उपनिषद्	॥	≈

साक्षात्कार ग्रंथ

ईश्वरका साक्षात्कार प्रथम भाग	३	॥=

श्रीमद्भगवद्गीता

भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी (टीका समेत)

,, तीन पृथक् जिल्दोंमें	१५	१॥
,, एक जिल्दमें	१२॥	१॥
,, श्लोकार्ध सूची	॥।	।=
भगवद्गीता लेखमाला भाग १, २, ७	३॥।	१
गीताका राजकीय तत्वालोचन	२	॥
गीता कर्मयोगी गणेशानन्दजी कृत	१	।=
भगवद्गीता छोटी पुस्तक	१	।=

वाल्मीकि रामायण

१ बालकांड	४	॥=
२ अयोध्या कांड पूर्वार्ध	४	॥=
३ ,, ,, उत्तरार्ध	४	॥=
४ अरण्यकांड	४	॥=
५ किष्किन्धाकाण्ड	४	॥=
६ सुन्दरकांड	४	॥=

७ युद्धकांड छप रहा है।

वर्ष ३३ **वैदिक धर्म** अंक १०

क्रमांक ४५

▲ भाद्रपद, विक्रम संवत् २००९, अक्टूबर १९५२ ▲

वीरोंके तेजस्वी शस्त्र

एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते ।
निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति
मातरः । ऋ० १।९२।१

अरे ! ये वे प्रसिद्ध उषा देवियाँ हैं। जो आकाशमें अपना ध्वज ऊपर खूब ऊंचा उभार रही हैं। आकाशके पूर्व दिशाके आधे भागमें प्रकाश फैल रहा है। जिस प्रकार शत्रुपर चाल करके आक्रमण करनेवाले वीर अपने आयुध चमकाते हैं उस प्रकार यह अरुणिमा फूटी पड रही है (लाल किरणें फैल रही हैं)

जिस प्रकार उषःकालमें आकाशके ऊपर प्रकाशका ध्वज फहराने लगता है उसी प्रकार स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने घरको सजाकर उसपर ध्वज फहरावें। पूर्व दिशासे जैसे प्रकाश बढने लगता है उसी प्रकार अपना घर स्वच्छ व उज्वल करना चाहिये। घरके शस्त्रास्त्र एवं अन्य साधन स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखने चाहिये। प्रातःकाल होते ही गौवोंको चरनेके लिये बाहर छोडना चाहिये।

महाभारत

१ आदिपर्व	मूल्य ७	डा. व्य. १॥
२ सभापर्व	३॥	॥।
३ शांतिपर्व (पूर्वार्ध)	१०	१।

महाभारतकी समालोचना

इसके दो भाग हैं। प्रत्येक भागका मूल्य	०॥।	।≡

वेद परिचय

१ वेद परिचय भाग १	१॥	।=
२ ,, ,, २	१॥	।=
३ ,, ,, ३	२	।≡

वेद प्रवेश

१ मरुद्देवता का मंत्र संग्रह	५	॥।
२ अश्विनौ देवताका मंत्र संग्रह	५	१
३ ऋग्वेदके अग्नि सूक्त	२	॥

संस्कृत पाठमाला
(चौवीस भाग)

(संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेका सुगम उपाय)

प्रत्येक पुस्तक	॥	=
१ से २४ भागोंका पुरा सेट	१२	१

धर्म-शिक्षाके ग्रंथ

बालक धर्म शिक्षा प्रथम भाग, प्रथम श्रेणीके लिये	≡
,, ,, द्वितीय भाग, द्वितीय ,, ,,	।-
वैदिक पाठमाला तृतीय श्रेणीके लिए	।-

वेद-स्वयं-शिक्षक

वेदका स्वयं शिक्षक भाग १	१॥	।=
,, ,, ,, भाग २	१॥	।=

आगम निबंध माला

१ वैदिक स्वराज्यकी महिमा	॥।	=
२ वैदिक सर्प विद्या	॥=	=
३ वेदमें चर्खा	॥=	=
४ मानवी आयुष्य	॥	=
५ इन्द्र शक्तिका विकास	॥	=
६ वेदमें कृषिविद्या	॥	-
७ छूत और अछूत प्रथम भाग	१	।=
८ ,, ,, द्वितीय भाग	१	।=
९ शतपथ बोधामृत	।=	-

देवता परिचय ग्रंथमाला

१ ऋग्वेदमें रुद्र देवता	॥=	=
२ वैदिक अग्निविद्या	२	।=
३ वैदिक चिकित्सा	१॥	।-

योग साधनमाला

	मू.	डा. व्य
१ ब्रह्मचर्य	१॥	।≡
२ योगके आसन	२॥	॥
३ योगके आसन चित्रपट	।	-
४ योगसाधनकी तैयारी	१	।=
५ सूर्यभेदन व्यायाम	॥।	।-
६ सूर्य नमस्कार	१	।-
७ ,, ,, चित्रपट	≡	-

उद्बोधक पुस्तकमाला

१ विजया दशमी (दशहरा)	॥	≠
२ भारत वर्षके हिंदू सम्राट्	॥।	।-
३ आर्योंका भगवा ध्वज	।	
४ हिंदी मुसलमानोंके कारनामोंका चिट्ठा। =		
५ श्री छत्रपति शिवाजी महाराजका राजा जयसिंहको पत्र	≡	
६ शेषशायी नारायण	=	
७ स्पिनोझा और उसका दर्शन	२	॥

वैदिक व्याख्यान माला

(१) मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन। (२) वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त। (३) अपना स्वराज्य। (४) श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु। (५) व्यक्तिवाद और समाजवाद। (६) ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

ये व्याख्यान तैयार हैं। दूसरे तैयार हो रहे हैं। [प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य ।≠) छः आने और डा. व्य. =) दो आने]

विष्णु सहस्र नाम मू. १॥ ट. ख. ॥

मासिक पत्र

वैदिक धर्म वार्षिक चंदा ५) वी. पी से ५॥)

पं. मदन मोहन विद्यासागर
तेनाली, के पुस्तक

१ वेदोंकी अन्तःसाक्षी का महत्त्व	०—९—०
२ संस्कार महत्व	०—९—०
३ जन कल्याण का मूल मन्त्र	०—८—०
४ आर्य स्तोत्र	०—८—०

मंत्री- स्वाध्याय-मंडल, भारतमुद्रणालय, आनन्दाश्रम, किल्ला पारडी, (जि. सूरत)

संस्कृतभाषा परीक्षा केन्द्रोंके

प्रमाणपत्र वितरणोत्सव

कपडवणज

संस्कृत और हिन्दीका शिक्षण देनेवाली कपडवणजकी एकमात्र संस्था "संस्कृत हिन्दी अध्यापन मंदिर" का बंबई राज्यके एजुकेशन डिपार्टमेन्टके स्थानिक कर्मचारी श्री. सी. के. देसाईने ता० ११-८-५२ के रोज इन्स्पेक्शन किया था। संस्कृत और हिन्दीके इस संस्था द्वारा दिये जानेवाले शिक्षणके प्रति उन्होंने संपूर्ण तरीकेसे संतोष व्यक्त किया। तथा इस संस्थाको सरकार मान्य करनेकी सहानुभूति प्रगट की है।

संस्कृत परीक्षाके लिये इस संस्थासे तैयार हुए सफल विद्यार्थियोंको इनाम और प्रमाणपत्र देनेका 'प्रमाणपत्र वितरणोत्सव' भी श्री. देसाई साहब की अध्यक्षतामें हुआ था। उस समय दोनों माध्यमिक शालाओंके आचार्य तथा शिक्षक और अन्य सद्‌गृहस्थ पधारे थे। संस्थाके संचालक श्री. विमलकान्त के. त्रिवेदी ने संस्थाका संक्षेपमें परिचय कराया। वक्ताओंने संस्थाके संस्कृत और हिन्दी प्रचारमें मदत करनेके बदलेमें संतोष प्रगट किया था। उस प्रसंगमें अध्यक्ष महोदयने संस्थाको मार्गदर्शन मिले ऐसा सुंदर प्रवचन किया।

आभार तथा फूलहारके बाद सभा विसर्जन हुई।

सोनगढ

ता. १४-८-५२ बुधवार जन्माष्टमीके शुभ दिन रात्रिके समय ८ बजे गुरुकुल आश्रममें श्रीमान् शेठ दामोदर पी. देसाईकी अध्यक्षतामें एक समारंभ हुआ। सबसे पहिले वैदिक प्रार्थना हुई बादमें व्यायामके अनेक प्रकारके लाठी, डंबेल्स, स्कीपिंगड्रिल, राइफलड्रिल, पिरामिड आदि प्रयोग हुए। अनन्तर 'अंधेरी नगरी चोपट राजा टके सेर भाजी टके सेर खाजा' का संवाद गुरुकुलके ब्रह्मचारीयोंने अच्छी तरहसे किया। बीच बीचमें संगीत भी धीरे धीरे बजता था। अर्जुन विषादयोगका संवाद भी अच्छी रीतसे ब्रह्मचारियोंने किया। बादमें श्री चारित्र्य रत्नाश्रमके संचालक पू. पाद श्री. कल्याणचन्द्रजी महाराज के वरद हस्ते विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये गये। प्रत्येक श्रेणीमें प्रथम आनेवालेको सं भा. प्र. स. पारडी की तरफसे एक एक पुस्तक पारितोषिक दी गई, और विशारदमें दूसरी श्रेणीमें आनेवालेको श्री गोहिल करणसिंहजी को एक 'रजत कप' स्थानिक मंडलकी तरफसे देनेमें आया। अंतमें स्थानिक केन्द्र व्यवस्थापक और सौराष्ट्रके प्रचारक पं. रविशंकर शर्मा विद्यावाचस्पति ने पारडी तरफसे प्रचारित संस्कृतकी परीक्षाओंका संक्षेपसे सारगर्भित विवरण दिया। इसके साथ साथ राष्ट्रभाषाके और प्राथमिक शालाकी परीक्षाओंके प्रमाणपत्र भी वितरित किये गये। इस समय लगभग दो तीन हजारकी संख्यामें जनमेदिनी जमा हुई थी।

सामरखा

सामरखामें संस्कृत भाषा स्वाध्याय मंडल का तृतीय संमेलन हुआ। श्री. पं. कान्तिलालजी उपाध्याय, सं. विशारदकी खास देखरेखमें उपर्युक्त मंडलका तृतीय संमेलन, महागुजरात संस्कार मंडलके अध्यक्ष श्री. रमेशचन्द्र जोशी, सिद्धान्त शास्त्री की अध्यक्षतामें ता. १९-७-५२ के रोज संध्या समय ५ बजे हुआ।

प्रार्थनाके बाद मंडलके अध्यक्ष श्री बलदेव भाई ने प्रासंगिक प्रवचन करते हुए संस्कृतकी महत्ता समझाई। श्री. पं. कान्तिलाल उपाध्याय ने मंडलका वार्षिक विवरण दिया, उसका उद्देश्य तथा अभीतककी प्रवृत्तीका ख्याल बताया। रा. भा. वर्धाके केन्द्र संचालक श्री. म. मो. पटेल ने अपने केन्द्रकी प्रगतिसे सबको परिचित किया।

संस्कृत स्वाध्यायमंडल वक्तृत्व स्पर्धा समिति तरफसे नियोजित हुई होडमें श्री. दलसुख सुतार प्रथम आये और उनको एक पुस्तक इनाममें दी गई।

धर्मवाणी संस्कृत और राष्ट्रवाणी हिन्दीके प्रमाणपत्रोंकी वितरण विधिके बाद, माननीय प्रमुख श्रीने अपनी अलौकिक वाणीसे संस्कृत-भाषाकी महत्ता बताते हुए एक अच्छा तत्त्वमय व्याख्यान दिया। राष्ट्रको संस्कृत भाषाकी आवश्यकता है और वेदोंके दृष्टान्त देकर समझाया।

अंतमें मंडलके व्यवस्थापक और केन्द्रव्यवस्थापक श्री. उपाध्याय ने आणंद पायोनीअर हाइस्कूलमें कार्यकर्ता श्री नटुभाई दवे का संस्कृत विद्यार्थियोंको श्रीमद्भगवद्गीताके पुस्तकें भेंट देनेके बदलेमें आभार माना, जिन हितेच्छु भाइयोंकी इच्छा होनेपर भी जो कार्यक्रममें न आ सके, उन्होंने अपने शुभसंदेश भेजकर अपनी फर्ज पूरी की। उन सबका उन्होंने आभार माना। प्रमुखश्रीको फुलहार हुए बादमें जन गण मन गीत गाया गया।

धीनोज

"संस्कृतभाषा प्रचार समिति पारडी" की परीक्षाओंमें सफल हुए विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र देनेके लिये एक समारंभ हुआ। संस्थाके आचार्य श्री. नवीनभाई बी. ए. बी टी. के वरदहस्ते प्रमाणपत्र दिये गये। 'संस्कृतभाषा प्रचार समिति पारडी' तरफसे विद्यार्थियोंको इनाम देना श्री गोविन्दभाई झा के हाथसे हुआ। ये संस्कृतके निपुण अध्यापक हैं उन्होंने कहा कि— इतनी बडी संस्थामें फक्त इतने ही छात्र बैठते हैं, यह शरमकी बात है, और आगामी परीक्षामें बैठना ही चाहिये, धीनोजके नागरिकोंका भी अच्छा सहकार है, केन्द्र व्यवस्थापकने परीक्षाके तथा समितिके वार्षिक कार्यका निवेदन किया। संस्थाके आचार्य श्रीने भी बहुत ही प्रेरणा दी।

बलसाड

गत २० अगस्तको बलसाड केन्द्रमें संस्कृत एवं हिन्दीका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव सम्मिलित रूपसे मनाया गया। गीताभवनके सुन्दर हालमें यह समारोह बडे उत्साहके साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसरपर स्वाध्यायमण्डलके अध्यक्ष श्री. पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजी एवं गुजरात प्रान्तीय रा. भा. प्र. समितिके संचालक श्री जेठालालजी जोशी ने अध्यक्षस्थानको अलङ्कृत किया। दोनों समितियोंके केन्द्रव्यवस्थापक श्री गजाननजी शास्त्री काव्यतीर्थके विशेष प्रयत्नोंसे यह प्रचार कार्य खूब उन्नत होरहा है। संस्कृत एवं हिन्दी समितियोंके मन्त्रियोंने अपनी अपनी रिपोर्ट सुनाई। एक पारसी विदुषीने संस्कृतभाषाके महत्त्वपर अत्यन्त प्रभावशाली भाषण दिया। उत्तीर्ण परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र वितरण करनेके पश्चात् अध्यक्षीय भाषण होकर समारम्भ समाप्त हुआ।

एक आदर्श केन्द्र

नवसारीमें संस्कृतप्रचार समितिके सदस्य एवं केन्द्र व्यवस्थापक श्री नानुभाई राजारामशास्त्री बडे उत्साह, लगन एवं त्यागभावसे कार्य कर रहे हैं। वहाँकी समिति द्वारा निर्धन विद्यार्थियोंको निःशुल्क पुस्तकें देनेका प्रबन्ध किया गया है। अध्यापकों द्वारा निःशुल्क वर्ग चलाये जाते हैं एवं परीक्षा दिनोंमें निरीक्षक पुरस्कार भी लेनेके लिये उन्होंने असंमति व्यक्त की है। सभी प्रचारक अत्यन्त त्याग एवं उत्साहसे संस्कृतभाषा प्रचारके इस पवित्र कार्यमें योग दे रहे हैं। इसीके परिणाम स्वरूप वहाँका कार्य दिन प्रतिदिन उन्नत होता जा रहा है। हम ऐसे आदर्श कार्य कर्ताओंका हृदयसे अभिनन्दन करते हैं।

मण्डलेश्वर

'श्री रत्नेश्वर संस्कृत पाठशाला' का प्रमाणपत्र वितरणोत्सव—

नगरके प्रमुख एवं प्रतिष्ठित नागरिकोंकी विशाल उपस्थितिमें यह उत्सव हुआ और उत्तीर्ण विद्यार्थियोंका उत्साह बढाते हुए प्रमाणपत्र वितरण किये।

स्थानीय प्रतिष्ठित महोदय श्री न. ग. वालिवडेकरजी वकील सा. ने अपने ओजस्वी भाषणमें कहा कि 'संस्कृत देवभाषा एवं सब भाषाओंकी जननी है। हरएक नागरिकका कर्तव्य है कि वे अपने बालकोंको पाठशालाओंमें भेजकर, राष्ट्रकी भावी सन्तानको संस्कृत पढाकर सच्चे देशसेवी बनावें।'

इस अवसरपर अध्यक्षस्थान महात्मा गांधी विद्यालयके मुख्याध्यापक श्री एम. आर. वेलणकरजीने ग्रहण किया था।

यह समस्तकार्य अत्यन्त उत्साहपूर्वक संचालित करनेवाले श्री परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी ब्रह्मानन्दजी तीर्थ ही इस केन्द्रके केन्द्रव्यवस्थापक हैं।

श्री रत्नेश्वर संस्कृत-पाठ-शालाके मुख्याध्यापक श्री. राजनाथ मेहता के सुपरिश्रम एवं सहयोगसे संस्कृत वर्गोंका प्रबन्ध सुचारु रूपसे चल रहा है। आपने समारम्भके अन्तमें पाठशालाका विवरण पढकर सुनाया और यह विश्वास एवं आशा व्यक्त की कि आगामी सत्रमें खूब प्रगति होगी।

पारितोषिक वितरणके पश्चात् उत्सव विसर्जित किया गया।

चांदोद

ता. ८-७-५२ के रोज नर्मदा देवीके किनारेपर बसा हुआ चांदोद तीर्थस्थान है। वहांपर 'स्वा० मं० पारडी द्वारा संचालित 'संस्कृत भाषा प्रचार समिति' की परीक्षाओंके तथा काशी, कलकत्ता, अहमदाबाद आदिकी परीक्षाओंके 'प्रमाणपत्र वितरणोत्सव' 'श्री जांबू ब्राह्मण काण्व संस्कृत पाठशाला' के केन्द्राध्यक्ष श्री शास्त्री छगनलालजी भट्टने वहांकी लायब्रेरी हॉलमें श्री १००८ श्री भागवताचार्य श्री अनिरुद्धाचार्यजीकी अध्यक्षतामें चांदोदके बडे महानुभावोंके साथ बहुत उत्साहसे मनाया। प्रथम पाठशालाके उत्साही विद्यार्थियोंके संस्कृतमें संवाद व गीत हुए, जिससे उपस्थित जनताको एक अपूर्व आनंदका अनुभव हुआ। संवादके अनन्तर विद्यार्थियोंको पाठशालाकी तरफसे पुस्तकोंके इनामके साथ प्रमाणपत्र दिये गये और 'संस्कृत भाषा प्रचार समिति' द्वारा, जो केन्द्रमें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण हुए थे, उन विद्यार्थियोंको पुस्तकें इनाम दी गई थी, वे भी जनताके समक्ष दी गई। इससे वहांकी प्रजापर उसका अच्छा प्रभाव पडा। इसके बाद विद्वान् पंडितोंका भाषण हुआ और श्रीमान् अनिरुद्धाचार्य अध्यक्षजीने भी 'संस्कृत भाषाका महत्व' इसपर भाषण दिया, जिससे सब संस्कृत भाषासे प्रभावित हुए। उनके मनमें भी संस्कृत भाषाके प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ।

ता० क० चांदोदमें संस्कृत भाषा प्रचार समितिकी स्थापना की गई है और शेठ श्री दामोदर ठाकरसी मूलाजी, संस्कृत पाठशालामें और संस्कृत भाषाध्ययनके लिये वर्ग भी चला रहा हैं और उसका लाभ जनता यथाशक्ति उठा रही है।

केडिला

ता १३-७-५२ के दिन शामको ३ बजेसे ७॥ बजेतक इस केन्द्रका, अतीत ता. ५, ६ ऐप्रिल १९५२ ईसवीका, संस्कृतभाषा प्रचार-परीक्षा सम्बन्धी प्रमाणपत्र वितरणोत्सव ब्रह्मश्रीमान् चक्कोडि (दुम्बे) शम्भु शास्त्रीजीकी अध्यक्षतामें एक विशेष समारोहके साथ मनाया गया। सभामें कोई एक सौ स्त्री-पुरुष लडकी लडके शामिल हुए थे। प्र० प्र० मि० पु० शङ्करनारायण भट्टजीने " शिक्षा, व्याकरण, छन्दस्, निरुक्त, ज्यौतिष, कल्प, " इन छे शास्त्रोंको वेदाङ्गत्व कैसे प्राप्त हुआ? इस विषयपर सरस भाषण दिया। यर्मुञ्ज शङ्कर जोयिस, ज्योतिर्विद्यामार्तण्डने भारतीय-संस्कृतिके स्वरूपका वर्णन किया। अध्यक्षजीने " आजकल संस्कृत-भाषाकी अनजानीसे हिन्दूसमाज, विशेषतः ब्राह्मण समाजका अधःपतन कैसे हुआ?" इसका सोदाहरण सिद्धान्त किया और हिन्दू-समाजके प्रति संस्कृतभाषा सीखनेकी प्रार्थना की। परीक्षाकेन्द्र-व्यवस्थापक च० मू० ईश्वरशास्त्रीसे परीक्षार्थियोंको अध्यक्षजीके द्वारा प्रमाणपत्र तथा सं० भा० प्र० समिति पारडीकी ओरसे भिजवाये हुए पारितोषिक वितरित किया गया। धन्यवाद समर्पण, मङ्गलगानके पश्चात् उत्सव समाप्त हुआ ॥

कुंभकोणम्

तारीख ६-६-५२ को स्थानीय 'टाउन हाईस्कूल' में संस्कृतभाषा परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियोंका प्रमाणपत्र वितरणोत्सव समारंभ हुआ। उस अवसरपर टाउन हाईस्कूलके प्रधानाध्यापक श्री राघव अय्यंगारजी सभापति रहे। स्कूलके संस्कृत अध्यापक एस. नटेशशर्माजीने संस्कृतकी आवश्यकतापर एक भाषण दिया।

अध्यक्षजीने उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये। सर्व प्रथम उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको स्वाध्यायमण्डलसे भेजे गये पुरस्कार भी अध्यक्ष द्वारा दिया गया। अध्यक्षजीने संस्कृत पाठ्यप्रणालीके बारेमें अच्छा व्याख्यान दिया।

उस समय स्कूलके विद्यार्थी मौजूद थे।

काश्मीर केन्द्र वृत्तान्त

आर्यभवन कर्णनगरमें एक बडा संस्कृत सम्मेलन मनाया गया। जिस पर बालक और बालिकाओंके अतिरिक्त कई विद्वान सज्जन और साधारण लोग उपस्थित हुये थे। डा० पं० कुलभूषणजी इस सम्मेलनके प्रधान थे। आप संस्कृतके बडे प्रेमी विद्वान हैं। त्रैमासिक संस्कृत पत्रिका " श्री " का संपादन और प्रबन्ध कई वर्षसे करते रहे हैं इसके अतिरिक्त संस्कृत साहित्य परिषद्के मंत्री आप बहुत समयतक रहे हैं। बहुत शोकके साथ यह सूचित करना पडता है कि उक्त पत्रिका अब प्रकाशित होती नहीं और परिषद्का काम भी बन्द हो गया है।

इस सम्मेलनमें सबसे प्रथम केन्द्रव्यवस्थापकने संस्कृतादि परीक्षाओं और उनके परिणामका वृत्तान्त सुनाया। इसके पीछे परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र और विशेष योग्यतावालोंको पुरस्कार दिये गये। काश्मीर प्रदेशमें प्रथम, द्वितीय और तृतीय रहनेवालोंको विशेष रूपसे पुरस्कार मिल गये। कई विद्वान सज्जनोंके भाषण हुये। जिनमें लोगोंसे बलपूर्वक प्रार्थना की गई कि वह संस्कृत भाषाका प्रचार अपने अपने घरोंमें करें। बालक और बालिकाओंको इस पवित्र भाषाका ज्ञान दे देवें! ऐसा करनेसे ही हमारी आर्य संस्कृति काश्मीर प्रदेशमें सुरक्षित रह सकती है। श्री प्रधानजीने अपने भाषणमें संस्कृत भाषाकी उन्नताका वर्णन करते हुये लोगोंसे प्रार्थना की कि इसका ज्ञान अवश्य प्राप्त करके देशकी उन्नतिमें लग जाना चाहिये। सारे देशका कल्याण तबतक नहीं हो सकता है जबतक देववाणी संस्कृतको पूरी तरह अपनाया न जाये। इन भाषणोंको सुनकर और प्रमाणपत्रादिको देखकर उपस्थित लोगोंमें बहुत उत्साह फैल गया।

नया केन्द्र

एक नया केन्द्र सागाममें स्थापित करवाया गया जहां श्री सूर्यनाथजी कार्य कर रहे हैं। यह बहुत ही उत्साही नवयुवक हैं और संस्कृत भाषाके एक बडे प्रेमी हैं।

जानकीनाथ, सिद्धान्तशास्त्री

व्यवस्थापक, संस्कृत भाषा प्रचार समिति,

आवश्यक सूचनायें

१- परीक्षाफल ता. १५ अक्टूबर बुधवार को प्रत्येक केन्द्रमें प्रकाशित होगा। परीक्षार्थियोंको चाहिये कि वे अपना परीक्षाफल स्थानीय केन्द्रों द्वारा विदित करें।

२- प्रमाणपत्र- सितम्बरकी परीक्षाओंके प्रमाणपत्र १ नवम्बर तक केन्द्रोंमें भेज दिये जावेंगे। केन्द्रव्यवस्थापकोंसे निवेदन है कि वे अपने केन्द्रोंके प्रमाणपत्र यथाशीघ्र वितरण करनेका प्रबन्ध करें।

३- आगामी परीक्षायें- सम्भवतः फरवरीके प्रथम सप्ताहमें होगी। अतः उसके लिये आवश्यक समय प्राप्त हो सके, इस दृष्टिको सामने रखकर प्रमाणपत्र वितरण आदिमें शीघ्रताकी अपेक्षा की जा रही है।

४- ६-७ सितं. ५२ ई. की परीक्षाओंका परीक्षा-व्यवस्था खर्च जिन केन्द्रोंसे नहीं भेजा गया है उनसे आग्रह है कि वे अपना केन्द्र-व्यवस्था व्यय-पत्रक शीघ्र भिजवा दें।

' स्वाध्याय मण्डल ' द्वारा संचालित
संस्कृत साहित्यकी परीक्षाओंका
पाठ्यक्रम एवं नियम

संस्कृत साहित्यके विशेष अध्ययनके लिये हमने इन परीक्षाओंका पाठ्यक्रम उच्च श्रेणियोंके समकक्ष रखा है। " विशारद ' उत्तीर्ण होनेके पश्चात् छात्र इन परीक्षाओंमें सम्मिलित हो सकते हैं।

' विशारद ' तकका हमारा पाठ्यक्रम निम्न प्रकारसे है।

१— प्रारम्भिणी — परीक्षा — प्रश्नपत्र १ — पाठमाला भाग १-२

२— प्रवेशिका — परीक्षा — प्रश्नपत्र २ — पाठमाला भाग ३से६

३— परिचय — परीक्षा — प्रश्नपत्र ३ — पाठमाला भाग ७से१२

४— विशारद — परीक्षा — प्रश्नपत्र ४ — पाठमाला भाग १३से१८

नियम

संस्कृत भाषा विशारद परीक्षाके पश्चात् निम्नलिखित तीन परीक्षायें संस्कृत साहित्यके विशेष ज्ञानके लिये प्रचलित की गई हैं।

परीक्षा नाम १-साहित्य प्रवीण २-साहित्यरत्न। ३-साहित्याचार्य।

क्रम- संस्कृतभाषा ' विशारद ' अथवा उसके समकक्ष किसी परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेके एक वर्ष पश्चात् ' साहित्य प्रवीण ' परीक्षामें बैठा जा सकता है।

' साहित्य प्रवीण ' उत्तीर्ण होनेपर दो वर्षके पश्चात् ' साहित्यरत्न ' में सम्मिलित होनेका अधिकार प्राप्त होगा।

' साहित्यरत्न ' उत्तीर्ण हो जानेके दो वर्ष पश्चात ' साहित्याचार्य ' में सम्मिलित होनेका अधिकार प्राप्त होगा।

समय- उपर्युक्त तीनों परीक्षाओंका समय समाचार पत्रो द्वारा तथा संस्कृतभाषा प्रचार केन्द्रों द्वारा कमसे कम तीन मास पूर्व घोषित किया जावेगा।

परीक्षा स्थान- संस्कृतभाषा प्रचार परीक्षाओंके केन्द्रोंमें ही उपर्युक्त परीक्षायें होंगी। किन्तु इनके केन्द्र अत्यन्त सीमित रहेंगे। एक जिलेमें केवल एक ही केन्द्र होगा।

प्राप्ताङ्क एवं शुल्क

१-साहित्य प्रवीण ५-०-० रु. ४०० पूर्णांक

२ साहित्यरत्न ६-०-० रु. ५०० पूर्णांक

३-साहित्याचार्य ७-०-० रु. ६०० पूर्णांक

(प्रत्येक प्रश्नपत्रके लिये १०० पूर्णांक एवं तीन घंटेका समय नियत है)

माध्यम- इन तीनों परीक्षाओंके प्रश्नपत्र संस्कृतमें ही किये जावेंगे; किन्तु उत्तरके लिये संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती अथवा अंग्रेजी भाषा भी स्वीकृत की जावेगी।

निबन्धोंकी भाषा केवल संस्कृत रहेगी।

ऐच्छिक विषय- वेद, धर्म, व्याकरण एवं दर्शन विषयोंके विशेष अध्ययनकी सुविधाके लिये इन्हें ऐच्छिक विषयोंके रूपमें पाठ्यक्रमके अन्तर्गत निर्धारित किया गया है।

साहित्य प्रवीणके चतुर्थ, साहित्यरत्नके पंचम तथा साहित्याचार्यके षष्ठ प्रश्नपत्रके स्थानपर उपर्युक्त पांच ऐच्छिक विषयोंमेंसे किसी एकको लिया जा सकता है।

प्रत्येक ऐच्छिक विषयके पूर्णांक १०० रहेंगे तथा समय तीन घण्टे।

इन तीनों परीक्षाओंके पदवी पत्रमें ऐच्छिक विषयोंका निर्देश रहेगा।

पाठ्यक्रम

१- साहित्य प्रवीण — प्रश्नपत्र चार

		पूर्णांक
प्रश्नपत्र १- (पद्य)		
	रघुवंश १—२ सर्ग	४०
	कुमार संभव १—२ सर्ग	४०
	कुवलयानन्द कारिका	२०
प्रश्नपत्र २- (व्याकरण एवं निबंधरचना)		
	लघुसिद्धान्त कौमुदी (संपूर्ण)	६०
	निबन्ध (प्रस्ताव तरंगिणी)	४०
प्रश्नपत्र ३- (नाटक-उपन्यास)		
	स्वप्नवासवदत्ता	३०
	दशकुमार चरित (पूर्व पीठिका)	३०
	शिवराज विजय (२०० पृष्ठ)	४०
प्रश्नपत्र ४- सामान्य ज्ञान (संस्कृत)		२०
	राष्ट्रभाषा-पथिक, रक्षाबन्धन, इक्कीस कहानियाँ	५०
	(मराठी) यशोधन, वाईकर भटजी, सात पाहुण्या.	३०
	अथवा	
	(गुजराती)	

२— साहित्य रत्न—

प्रश्नपत्र १- (पद्य)		
	किरातार्जुनीयम् १—२ सर्ग	४०
	शिशुपालवध १—२ सर्ग	४०
	वृत्तरत्नाकर	२०
प्रश्नपत्र २- (व्याकरण-निबंध रचना)		
	सिद्धान्त कौमुदी (कारक-समास)	६०
	निबन्ध	४०
प्रश्नपत्र ३- (नाटक-उपन्यास)		
	शाकुन्तलम्	३०
	विश्रुत चरितम्	३०
	कुमुदिनीचन्द्रः (१-७ कला)	४०
प्रश्नपत्र ४- (विशेष कविका अध्ययन एवं लक्षण शास्त्र)		
	कालिदास (मिराशीकृत)	४०
	साहित्यदर्पण (दोषालंकार परिच्छेद)	६०
प्रश्नपत्र ५- सामान्य ज्ञान (संस्कृत)		२०
	राष्ट्रभाषा जयद्रथवध, शाहजहाँ, हिन्दीकी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ	५०
	(मराठी) आंबराई, मुशाफरी, वंदेमातरम्	३०
	अथवा	
	(गुजराती)	

३ साहित्याचार्य

प्रश्नपत्र १- (पद्य)		
	नैषधीय चरितम् (सर्ग १-२-३)	७५
	हर्ष चरितम्	२५
प्रश्नपत्र २- (व्याकरण-निबन्धरचना)		
	सिद्धान्त कौमुदी (तद्धित कृदन्त)	६०
	निबन्ध	४०
प्रश्नपत्र ३- (नाटक-उपन्यास)		
	उत्तर राम चरितम्	३०
	मालती माधव	३०
	कुमुदिनी चन्द्रः (८-१६ कला)	४०

प्रश्नपत्र ४ - (कविका विशेष अध्ययन-उपन्यास)

कादम्बरी (१०० पृष्ठ)	६०
भास (चरित्र)	४०

प्रश्नपत्र ५ (वैदिक सूक्त व वैदिक व्याकरण)

१ पुरुष, प्राण, मातृभूमि, ब्रह्मचर्य, केन सूक्त	६०
निरुक्त (प्रथमाध्याय)	४०

प्रश्नपत्र ६ राष्ट्रभाषा-प्रिय प्रवास, चित्रलेखा,

हिन्दी निबन्ध माला	५०
संस्कृत साहित्यका इतिहास	२०
(मराठी) वाग्वैजयंति, रागिणी, जीवन प्रकाश	३०

अथवा

(गुजराती) . . . . .

ऐच्छिक विषय

१ साहित्य प्रवीण

१ दर्शन

सांख्यतत्त्व कौमुदी, पातञ्जल योगसूत्र (भोजवृत्ती सह)

२ व्याकरण

काशिका, परमलघुमंजूषा, पाणिनीय शिक्षा

३ धर्म

मनुस्मृति २ रा और ७ अध्याय। ईश और छान्दोग्य उपनिषद्

४ वेद

यजुर्वेद १ म. अध्याय। वैदिक स्वराज्यकी महिमा

२ साहित्य रत्न

१ दर्शन

सांख्य-कारिका। सर्व दर्शन संग्रह

२ व्याकरण

परिभाषेन्दु शेखर। वैयाकरण भूषणसार

३ धर्म

केन एवं बृहदारण्यक उपनिषद्

४ वेद

यजुर्वेद २२ वां अध्याय। इन्द्र शक्तिका विकास

३ साहित्याचार्य

१ दर्शन

सांख्य प्रवचन भाष्य। पातञ्जल योगसूत्र (वाचस्पति वृत्ति सहित व्यास भाष्य व नागेशवृत्ति सहित)

२ व्याकरण

शब्द कौस्तुभ (नवाह्निकी) लघुमन्जूषा

३ धर्म

याज्ञवल्क्यस्मृति–आचार व प्रायश्चित। आपस्तंब धर्मसूत्र।

४ वेद

यजुर्वेद ३६ वां अध्याय। उषादेवताके सूक्त

सूचना:— १– उपर्युक्त परीक्षायें सन् १९५३ ई. से प्रारम्भ होंगी।

२– गुजराती पाठ्य पुस्तकोंके नाम अगले मासमें प्रकाशित होंगे।

हमारी आशामयी प्रगति

सम्पूर्ण भारतमें कुछ समय पूर्व हमने संस्कृत-भाषा-प्रचारके लिये एक योजना बनाई थी। इसकी प्रगतिका विवरण देनेसे पूर्व इस भाषाके विषयमें निम्नाङ्कित चार शब्द लिख देना उचित प्रतीत होता है। वैसे तो भारतीयोंका कदाचित ही कोई ऐसा समारम्भ हो, जहाँ संस्कृतका आदर एवं उसकी आवश्यकता न पडती हो। प्रत्येक भारतीय गृहस्थमें (वह चाहे जिस सम्प्रदायको माननेवाले हों) संस्कृत भाषाके बिना काम चलता ही नहीं है। प्रातः सायं-प्रभुकी प्रार्थना, वन्दना, आरती आदि संस्कृतमें ही होती हैं। हमारे सम्पूर्ण उत्सवोंमें, चाहे वह विवाह सम्बन्धि हो, जन्म सम्बन्धि हो, सत्कार सम्बन्धि हो, मृत्युसम्बन्धि हो या अन्य किसी भी प्रकारका आनन्दोत्सव हो संस्कृतको ही प्रमुखता मिलती है। हमारे जीवनके साथ इतनी अधिक घनिष्ठता, अनिवार्यता एवं एकरसता इस संस्कृतकी है। बडे बडे राष्ट्रीय समारोहोंमें, राष्ट्रगीनकी पदावलियोंमें एवं साहित्यिक कृतियोंमें (वह चाहे किसी भी प्रान्तीय भाषाकी क्यों न हो) इसी संस्कृतके दर्शन हमें होते हैं। हमारे देशके सभी विद्वान् एवं नेता एकस्वरसे इसके महत्वको स्वीकार करते हैं। यदि हम गणना करें तो हमारे दैनिक व्यवहारमें प्रयुक्त शब्दोंमें लगभग ७० प्रतिशत शब्द तो संस्कृतके होंगे। इसका सम्बन्ध हमारे राष्ट्रके साथ आजका नहीं है, अपितु जब हमारी जन्मभूमिका अस्तित्व मूर्तिमय हुआ तभीसे इसके साथ हमारा सम्बन्ध है तभीसे हमने इसके लिये धरा और धरित्री, भूमि और माता आदि शब्द प्रयुक्त किये। हिमाचल, विन्ध्याचल, गङ्गा, यमुना, पूर्व, पश्चिम सागर, सरिता, वृक्ष, लता, अङ्ग, वङ्ग आदि सभी हमारे वैभवके प्रदर्शक नाम न जाने कितने प्राचीन कालसे इसी भाषाके गौरवको सिद्ध करते आ रहे हैं।

हमने जिस पाठ्यपद्धतिको अपनाया है उसके द्वारा इस भाषाको सीख लेना अत्यन्त सरल होगया है। ३२ वर्षके अनुभवके पश्चात् हम इसकी सरलताके विषयमें इतने आत्मविश्वास के साथ लिख रहे हैं। स्वर्गीय वल्लभभाई पटेल, पूज्य गाधीजी एवं अफ्रीकाके एक रोमन कॅथोलिक पादरीने इन पाठमालाओंके द्वारा संस्कृतका अच्छा ज्ञान कर लिया। इससे यह निश्चय होता है कि वृद्धावस्थामें, थोडासा समय देकर, विना किसी नियमित अध्यापककी सहायताके भी इस पाठ्यक्रमके द्वारा कोई भी संस्कृतभाषा सीख सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमारी निम्नाङ्कित अभिनव प्रगतिसे और भी स्पष्ट रूपमें मिल जाता है।

	परीक्षा समय	केन्द्रसंख्या	परीक्षार्थी संख्या
१—	सितम्बर सन् १९५०	३३	८००
२—	फरवरी एवं एप्रिल सन् १९५१	८०	१८००
३—	सितम्बर सन् १९५१	१२५	३०००
४—	फरवरी एवं एप्रिल सन् १९५२	१२६	३६००
५—	सितम्बर सन् १९५२	१३०	४६००

हमारी कुल मिलाकर चार परीक्षायें हैं तथा वे वर्षमें दो बार होती हैं। संस्कृत अध्यापक ही हमारी इस योजनाको फलवती बनानेमें प्रमुख हैं। सच पूछा जाय तो राष्ट्रके संस्कृत शिक्षकोंके लिये यह एक अत्यन्त व्यापक एवं गौरवप्रदक्षेत्र है, जिसमें कार्य करके वे राष्ट्रभारती एवं राष्ट्रमाताकी महान् सेवा कर सकते हैं।

अबतक सारे भारतमें हमारे २७५ केन्द्र स्थापित हो चुके हैं। श्रीनगर, पटियालासे लेकर गौहाटीतक एवं अजमेर, बम्बई कुम्भकोणम्से हैद्राबाद और पटना आदितक सारे भारतमें इसका प्रचार है। गुजरात का स्थान इस कार्यमें सर्वप्रथम है। इसके पश्चात् मध्यप्रान्त, हैद्राबादराज्य, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, आन्ध्र, पंजाब एवं आसामका है।

सम्पूर्ण पत्र व्यवहारके लिये निम्नपतेसे पत्र व्यवहार कीजिये-

—परीक्षा-मन्त्री स्वाध्यायमण्डल, 'आनन्दाश्रम' किल्ला-पारडी (जि० सूरत)

ॐ

(१) अध्यात्म ज्ञान से
वैयक्तिक दिव्य जीवन

अध्यात्मके सिद्धान्त पर आधारित वैयक्तिक जीवन किस प्रकारका होना सम्भव है, इस विषयपर आज हमें विचार करना है। भारतीय ऋषि-मुनियोंने बहुतसी तपस्या एवं ध्यानधारणा करके एवं अनेक अनुभव प्राप्त करके अध्यात्मशास्त्रके सिद्धान्तोंका निर्धारण किया है। ये सिद्धान्त तीनों कालोंमें टिकनेवाले हैं; अतएव इसी अध्यात्मकी नींवपर उन्होंने वैयक्तिक एवं राष्ट्रीय जीवनकी इमारत खडी की। आर्योंके वैयक्तिक एवं सामुदायिक जीवनकी यही मौलिक विशेषता है। आज हमारा ध्यान ही इस विशेषताकी ओर नहीं है, अपितु आज तो हमारा जीवन अध्यात्मकी इस उच्च भूमिकासे बहुत नीचे तक पतन हो चुका है। पतनकी यह स्थिति लगभग दो हजार वर्षोंसे निरन्तर चली आ रही है। बीच बीचमें अनेक महान पुरुषोंने इसे रोकनेका प्रयत्न किया और इसके फलस्वरूप यह पतन कुछ रुक भी गया, किन्तु पुनः वह उसी वेगसे आरम्भ होता रहा। हमारी यह अवस्था दो हजार वर्षोंसे है!!! ऐसा क्यों हो रहा है? इस प्रश्न पर विचार करनेका समय अब आ चुका है; अतएव आज इसी विषयपर विचार किया जाता है।

स्वराज्य प्राप्तिके पश्चात् हमारा उत्तरदायित्व

हमें स्वाधीनता मिली है। इस स्वराज्यका उपभोग हमें सुराज्य बनाकर करना है और भारतीय सभ्यताके उद्यानको नन्दनवन बनाकर विश्वको यह दिखाना है कि भारतीय सभ्यता इतनी ऊंची है कि जिसमें उसे सच्ची शान्ति प्राप्त हो सकेगी।

समुद्रपर्यन्तायाः पृथिव्या एकराट्। ऐ. ब्रा.

'समुद्र तक पृथ्वीका एक आर्यराजा हो और इस समग्र पृथ्वीका राज्य एक आर्य विधानके अनुसार चले ' यह पांच हजार वर्ष पूर्व की गई ऋषियोंकी घोषणा आज तक पूर्ण नहीं हो पाई। उसे पूर्ण करके दिखानेकी इच्छा आज यदि किसी की हो तो वह पूर्ण हो सकती है; क्योंकि आज हम स्वतन्त्र हैं। यदि हम व्यवस्थितरूपसे प्रयत्न करें तो सफलता अवश्य मिल सकती है। बात केवल इतनी है कि इसके लिये जो कुछ प्रयत्न किया जाय वह सर्वथा सच्चा हो।

इसके लिये सर्वप्रथम हमें पतनकी ओर अग्रसर होती हुई अपनी गतिको शीघ्र रोकना चाहिये, तथा अभ्युदय एवं निःश्रेयसकी प्राप्तिके लिये एक सफल कार्यक्रम निर्धारित कर हमें यथाशीघ्र उस दिशाकी ओर प्रगति करनी चाहिये।

विचार, वक्तव्य, आचार

मनुष्योंके अन्दर कुछ विचार स्थायी रूपसे रहते हैं। कुछ निश्चितसे सिद्धान्तोंको वह अपने जीवनमें ढाल लेता है। तदनुसार बोलता है तथा जो बोलता है उसीके अनुसार वह कार्य किया करता है। इस कार्य द्वारा मनुष्यकी उन्नति या अवनती जो कुछ होनी सम्भव है वह हुआ करती है। यदि पिछले हजार दो हजार वर्षोंसे सचमुच हमारी अवनती होती जा रही है तो हमें यह विचार करना आवश्यक है कि हमारे आचार विचार ठीक हैं या नहीं।

वेदकालीन आर्यराष्ट्रकी तेजस्विताकी प्रशंसा संसारके सभी विद्वान एक स्वरसे सदैव करते आये हैं। वेद, उपनिषद्, गीताकी कोई प्रशंसा नहीं करता, ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा। इतने श्रेष्ठ तत्वज्ञानके अधिकारी एवं बडी सावधानीसे उसकी रक्षा करनेवाले हम इतनी अवनतावस्थामें क्यों हैं। विगत हजार डेढ हजार वर्षोंमें बाहरके

आक्रमण बराबर यहाँ आते रहें, यहाँ आकर हमारी कतल करें, लूटपाट करें और स्वयं खूब चैन उडावें; किन्तु हमें सुखसे न रहने दें!! ऐसा क्यों हुआ, इस बातका विचार करना चाहिये।

विचार, कथन और आचरणका बहुत अधिक महत्त्व है; किन्तु इनमें भी विचारोंका विशेष महत्त्व है। जैसे विचार होंगे वैसाही कथन होगा और तदनुसार ही आचरण होगा। अतः हम प्रथम यह देखेंगे कि वैयक्तिक विचार पहले कैसे थे और आज किस प्रकारके हैं। हमने पहले ही कहा है कि प्राचीन भारतीय आर्योंके वैयक्तिक जीवनका आधार अध्यात्म था। जबतक वह ठीक रहा तब तक आर्य दिग्विजयी होते रहे। किन्तु वह आधार ज्यों ज्यों उतरता गया त्यों त्यों आर्योंकी अवनती होती चली गई। इस अवनतिके कारण कौनसे विचार थे? इसपर हमें यहाँ प्रकाश डालना है।

उत्तम पुरुष

आर्योंके जीवनकी आध्यात्मिकता उनके सम्पूर्ण जीवनमें ओतप्रोत थी। अतएव उनके सभी शास्त्रोंपर आध्यात्मिकताकी छाप दिखाई देती है। हम उदाहरणार्थ व्याकरण-शास्त्रके तीन पुरुषोंको लेंगे—

१- उत्तमपुरुष--अस्मद्, अहं। २- मध्यम पुरुष--युष्मद्, त्वं। ३-- तृतीयपुरुष--तद्, सः। 'मैं' उत्तम पुरुष है, उत्तम पुरुषकाही अर्थ 'पुरुषोत्तम' है। 'उत्तमपुरुष' और 'पुरुषोत्तम' एकही बात है। मैं 'उत्तम पुरुष' हूँ अर्थात् 'पुरुषोत्तम' हूँ, यही अध्यात्मज्ञान है। 'अहं ब्रह्म अस्मि' में 'मैं ही' पुरुषोत्तम' हूँ, ऐसा कहा गया है। साधारणसे व्याकरण शास्त्रने यह इस प्रकार अध्यात्मके मुख्य सिद्धान्तका प्रतिपादन किया है!

अस्तित्ववान् पुरुष

उत्तम पुरुष अर्थात् 'अस्मत्' पद द्वारा निर्दिष्ट पुरुष। 'अस्+मत्' अर्थात् 'अस्तित्ववान्' जिसका अस्तित्व है ऐसा पुरुष। जिसके लिये स्वयं का अस्तित्व है ऐसा पुरुषोत्तमके अतिरिक्त और कौन होगा? 'असमत्' पद 'मेरे अपने स्वयंभूपनेका अस्तित्व बता रहा है। दूसरे किसी की भी सहायता प्राप्त किये बिना मैं अपना अस्तित्व स्थिर रख सकता हूँ। ऐसा मैं स्वयंसिद्ध पुरुष हूँ। यही मेरा 'उत्तमपुरुषत्व' और यही 'पुरुषोत्तमत्व' है।

इस 'असमत्' शब्दकी प्रथमाका एकवचन 'अहं' बनता है। 'अ+हं' अर्थात् 'जिसका त्याग न हो सके वह' (अ) नहीं (हा) त्याग जिसका वह 'अ-हं' है। यही 'अस्--मत्' और यही 'उत्तमपुरुष' अथवा 'पुरुषोत्तम' है। यही 'स्वयम्भू' स्वरूप 'मैं' हूँ। अध्यात्मका यह तत्त्वज्ञान व्याकरणके दो शब्दोंद्वारा यहाँ पर दिखाया गया है।

मैं उत्तमपुरुष, मैं (अस्मत्) अस्तित्ववान् अथवा जिसका अपना अस्तित्व है ऐसे मेरा त्याग किसीसे भी (अ+हं) नहीं हो सकता, ऐसा मैं हूँ।

तू 'युष्मत्' अर्थात् 'आयुष्+मत्' मेरे आशीर्वादसे आयुष्य प्राप्त हुआ हुआ, ऐसा तू है। मैंने तुझे अस्तित्व प्रदान किया है। 'तू है' ऐसा मैंने कहा, अतएव तुझे अस्तित्व प्राप्त हुआ है। यह मध्यमपुरुष है।

मैं और तू के अतिरिक्त (तत् अर्थात् वह) एक तीसरा पुरुष है। वह (अस्मत्) अस्तित्ववान् भी नहीं है और (युष्मत्, आयुष्मत्) उसे मैंने अस्तित्व भी प्रदान नहीं किया है। इस प्रकारका यह तृतीयपुरुष है।

मैं तू और वह इन तीन पुरुषोंसे समस्त विश्व व्याप्त है। इनमें 'मैं' उत्तमपुरुष है। सबसे उच्च 'मैं' है। इस मैं के अस्तित्वसे ही अन्य सबको अस्तित्व प्राप्त हुआ है। इस प्रकारका मैं स्वयम्भू और स्वयंके अस्तित्वसे सदैव रहनेवाला तथा दूसरोंको अस्तित्व देनेवाला सबमें सामर्थ्य-युक्त मैं हूँ। यह समस्त तत्त्वज्ञानका आधार है। इसे व्याकरणके २-३ शब्दोंद्वारा हमने बताया है। यही बात उपनिषदोंमें भी व्यक्त की गई है—

अहं ब्रह्म अस्मि। तत् त्वं असि।

'अहं ब्रह्म अस्मि' अर्थात् 'मैं एक बडी शक्ति हूँ' 'मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ' 'मैं उत्तम पुरुष' अथवा 'पुरुषोत्तम हूँ। ये उपनिषदोंके विचार हैं। मैं एक महान् शक्ति हूँ। मैं दीन हीन नहीं हूँ, मैं तुच्छ अथवा उपेक्षणीय नहीं हूँ, ये कितने ऊंचे विचार हैं? ये विचार मनमें आते ही हमारी ऊंचाई थोडी बहुत बढी है, हममें कुछ शक्ति बढी है, ऐसा प्रतीत होता है। ऐसे उच्च पदारूढ इस 'मैं' की कालान्तरमें जो अवनति हुई वह कहाँतक पहुँची, इसका विचार करना चाहिये। देखिये—

पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।

'मैं पापी हूँ, मैं पाप कर्म करता हूँ, मैं पापात्मा हूँ और पापके कारण ही यह मेरा जन्म हुआ है; इस प्रकार मैं बड़ा अपराधी हूँ, दोषी हूँ ।'

एकदम ऊंचे शिखरसे घसरते हुए बहुत नीचे आकर गिर पड़नेके समान यह स्थित्यन्तर हुआ है। कहाँ स्वयम्भू, स्वतः सिद्ध पुरुषोत्तमकी स्थिति और कहाँ 'पापमूलक मेरा जन्म है और मैं पापी हूँ' ऐसा मानना! समस्त वेदों और उपनिषदोंमें ऐसा एक भी वाक्य नहीं है कि जहाँ इस प्रकारसे हमने स्वयंको ही कोसा हो या अपमानित किया हो। बुद्धके पश्चात् 'जन्म पापमूलक है' ऐसे विचारोंको प्रोत्साहन मिला और तबसे यह आत्मघातकी विचारसरणी उत्पन्न हुई, जो आज तक जारी है।

मैं इन्द्र हूँ

'मैं उत्तम पुरुष हूँ' अर्थात् 'मैं पुरुषोत्तम' हूँ, यह उपनिषदोंका तत्वज्ञान व्याकरणमें किस प्रकार आया है, अब इसे देखना है तथा वेद मन्त्रोंमें यही बात किस रूपमें उल्लिखित है, इसे देखना है—

अहं इन्द्रो न पराजिग्य इद्धन ।
न मृत्यवे अवतस्थे कदाचन ॥ ऋ १०।४८।५

'मैं इन्द्र हूँ, मेरा धन मुझे पराजित करके कोई भी छीन नहीं सकता, मैं कभी भी मृत्युको प्राप्त न होऊंगा।'

'मैं पुरुषोत्तम हूँ, मैं ब्रह्म हूँ, 'मैं इन्द्र हूँ।' ये वाक्य एक ही आशयको व्यक्त करते हैं और वह आशय है कि 'मैं शक्तिमान् हूँ' 'मैं शक्तिका केन्द्र हूँ' इसीका स्पष्टीकरण उपर्युक्त मन्त्रोंके अगले भागोंने किया है 'न परा जिग्ये' मैं पराभूत नहीं होता, मेरा कोई भी पराभव नहीं कर सकता, मेरा पराभव करके मेरा धन कोई भी नहीं छीन सकता। यह सब 'मैं इन्द्र हूँ' का स्पष्टीकरण है।

शक्तिका केन्द्र मैं

'मैं' द्वारा जिसका निर्देश किया जाता है उसका स्वरूप-वर्णन करना अध्यात्मशास्त्रका विषय है। 'मैं' नाम की जो वस्तु है वह शक्तिमान् है अथवा निर्बल है? यह प्रश्न यहाँ उपस्थित है। इस प्रश्नका उत्तर इस मन्त्र द्वारा 'मैं शक्तिमान् हूँ' के रूपमें दिया है। मैं इतना शक्तिमान हूँ कि मेरा पराभव कोई भी नहीं कर सकता, इतना मुझमें सामर्थ्य है। 'अहं इन्द्रः' मैं इन्द्र हूँ। इन्द्र अर्थात् मैं (इन्) शत्रुका (द्र) विदारण करनेवाला हूँ। 'मैं इन्द्र हूँ' का ही अर्थ है कि मैं सामर्थ्यशाली हूँ और मैं अपने सम्पूर्ण शत्रुओंका विदारण करके उनका विनाश कर सकता हूँ। मुझमें इतना अधिक सामर्थ्य है। इस मन्त्रका यह आशय है। 'मैं' नामकी जो वस्तु है उसका यह इतना महान् सामर्थ्य है।

जिस प्रकार सामर्थ्यशाली विद्युत् सम्पूर्ण वस्तुओंमें है, किन्तु वह घर्षणादि प्रयोगों द्वारा प्रकट करनी पड़ती है; इसी प्रकार 'मैं' के अन्दर यह इन्द्रशक्ति है। वह अनेक अनुष्ठानों द्वारा प्रकट होती है। अर्थात् यह तो सुनिश्चित है कि वहाँ शक्ति है और वह 'मैं' निर्बल नहीं, सबल है। इसमें स्वभावतः शक्ति है। यह शक्ति किसीमें गुप्त हुआ करती है तो किसीमें प्रगट। किन्तु मूलतः वह शक्ति अन्दर रहती है। इस 'मैं' में ऐसी बड़ी शक्ति विद्यमान है। इसी शक्ति पर हमें ध्यान देना चाहिये। इसकी उपेक्षा करना उचित नहीं है। हमारे समस्त अध्यात्मशास्त्र इसी शक्तिका वर्णन करते हैं। इसी को हमें देखना चाहिये।

इन्द्रकी सभा

इन्द्र की एक सभा है, उस सभाका अध्यक्ष इन्द्र है और अन्य सब देव उस सभाके सभासद हैं। मुख्य देव ३३ हैं और इनमें प्रत्येकके कोट्यवधि देव अनुयायी हैं। इसीलिये 'तेंतीस कोटि देव' की कहावत पड़ी है। इस सभाके नाम 'इन्द्रसभा, देवसभा' है। यह देवसभा इसी शरीरमें विद्यमान है, ऐसा वेद एवं उपनिषदोंमें कहा गया है। जहाँ इन्द्र होगा वहाँ उसके सहचारी देव होने ही चाहिये। अतः यदि 'मैं' इन्द्र है तो उसकी देवसभा वहाँ पर होनी ही चाहिये।

इन्द्र एवं इन्द्रियाँ

किन्तु 'मैं इन्द्र हूँ' इसका पताही पहले तो बहुतसों को नहीं होगा। अतः इसी बातको प्रथमतः सिद्ध करना चाहिये। सब लोगोंको यह पता है कि इस शरीरमें पांच ज्ञानेन्द्रियाँ, पांच कर्मेन्द्रियाँ एवं कुछ अन्तरिन्द्रियाँ हैं।

यह इन्द्रिय शब्द अत्यन्त महत्वका है तथा विचारणीय भी है। इन्द्रियका अर्थ है 'इन्द्रकी शक्ति' ये सारी इन्द्रियाँ इस इन्द्र की शक्तियाँ हैं। यदि कर्मेन्द्रियाँ, ज्ञानेन्द्रियाँ एव अन्तरेन्द्रियाँ इन्द्रकी शक्तियाँ हैं तो फिर इन सबके पीछे इन्द्र भी कहीं न कहीं तो होना ही चाहिये, यह स्पष्ट है। इन्द्रियोंका यह नामकरण 'इन्द्रकी शक्ति' होनेके कारण ही हुआ है। अतः इनका जो अधिष्ठाता, अधिपति या संचालक होगा वही इन्द्र होना चाहिये, यह स्पष्ट है। इन्द्र कहाँ है? इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हमें अपने शरीरमें ही मिल सकता है। इस प्रमाणके आधारपर यह सिद्ध होता है कि देहका स्वामी जो 'मैं' वही इन्द्र है और उसकी यह शक्ति इन समस्त इन्द्रियोंमें फैली हुई है। इस आत्माको इन्द्र कहा जाता है; अतएव उसकी शक्तियोंको 'इन्द्रिय' कहा जाता है।

इन्द्र--सभाके देवता

अबतकके विवरणसे यह प्रतिपादित हुआ कि इन्द्र इसी शरीरमें निवास करता है। जहाँ वह निवास करता है वहीं स्वर्ग है, वहीं अमरावती है, स्वर्ग का जो नन्दनवन है वह यही है। इसी अमरावतीमें देवोंकी सभा भरा करती है और उस सभाका अध्यक्ष इन्द्र बना करता है। अब हम इस सभाका कुछ समीपसे निरीक्षण करेंगे। ऐतरेय उपनिषद्में यही विषय आया है—

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्, वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्, सूर्यः चक्षुर्भूत्वा अक्षिणी प्राविशत्, आपः रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् (ऐ. उ.)

'अग्नि वाग्रूपसे मुखमें प्रविष्ट हुआ, वायु प्राण बनकर नासिका द्वारा हृदयमें प्रविष्ट हुआ, सूर्य नेत्र बनकर आंखोंमें प्रविष्ट हुआ, जल वीर्य बनकर शिश्न इन्द्रियमें प्रविष्ट हुआ' इस प्रकार विश्वके पूरे तेंहतीस देव भिन्न भिन्न इन्द्रियों एवं अवयवोंके रूपमें शरीरमें आकर भिन्न भिन्न स्थानोंपर आकर रहने लगे। इस प्रकारकी यह देवसभा इस शरीर में भरी है और इसका अध्यक्ष इन्द्र बना है। ये देव इस शरीरमें किस प्रकार प्रविष्ट हुए? इसका स्पष्टीकरण अथर्ववेदमें इस प्रकार मिलता है—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवता अङ्गे सर्वे समाहिताः ॥१३॥

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवता अङ्गे गात्रा विभेजिरे।
तान् वै त्रयस्त्रिंशद्देवानेके ब्रह्मविदो विदुः ॥२७॥
अ. १०-७

'ये तेंहतीस देव शरीरके अवयवोंमें तथा इन्द्रियोंमें आकर रहे हैं' अथर्ववेदका यही वर्णन ऐतरेय उपनिषद्ने विशेष विस्तारसे दिया है। हमारे शरीरकी प्रत्येक इन्द्रियमें और अवयवमें इस प्रकारसे समस्त देव आकर रहे हैं। इस प्रकार यह शरीर 'देवोंका मन्दिर' है।

सर्वा ह्यस्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते। अथर्व०।

'जिस प्रकार गौशालामें गायें रहती हैं उसी प्रकार सब देव यहाँ आकर बस गये हैं' सब देवोंका आगमन यहाँ हुआ है और वे अपने अपने निश्चित स्थानोंपर आकर बस गये हैं। इस प्रकार हमारा यह शरीर देवोंका मन्दिर है। इस देव सभाका मैं ही अध्यक्ष हूँ अर्थात् मैं इन्द्र हूँ और यही 'मैं' पुरुषोत्तम हूँ, यह विवरण पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। यही इन्द्र, यही उत्तमपुरुष, यही आत्मा एवं यही ब्रह्म है। कितनी अधिक है हमारी योग्यता! कितना है यह हमारा सामर्थ्य!! अपनी इस शक्तिको प्रगट करके उसे अपने आधीन करनेके लिये ही योगमार्गोंके अनेक अनुष्ठान हैं। इस शक्तिके प्रति आज हमारा उपेक्षा भाव है। आज हम इसी देहको 'पूयविण्मूत्रका गोला' कहते हैं!!! यह कितना अमङ्गल एवं बीभत्स वर्णन है! हम देव मन्दिरमें थे। वहाँ से अवनत होते होते हमारा पतन नीच रूपमें हो गया!! विचारोंका यह परिवर्तन हमारी मनोभूमिकामें हो चुका है और यही हमारे पतनका मुख्य कारण है।

मैं 'उत्तम पुरुष' हूँ यह विचार समाप्त हो गया और उसके स्थानपर 'मैं पापी हूँ' यह विचार आ गया।' मेरा शरीर देवमन्दिर है' यह उच्च कल्पना जाकर उसके स्थान पर यह मेरा शरीर 'पूयविण्मूत्रका गोला' है, यह कुकल्पना आगई। पुरुषोत्तमकी यह कैसी दुरवस्था है!

शक्तिवृद्धिका अनुष्ठान

जिस समय यह कल्पना थी कि यह शरीर देवमन्दिर है उस समय शरीरकी शक्ति बढानेके लिये अनेक अनुष्ठान किये जाते थे। हम सब यह विश्वासपूर्वक अनुभव करते हैं

कि बाहरके विश्वमें जो बडे देव विद्यमान हैं उन्हींके अंश हमारे शरीरमें आकर बस गये हैं तथा बाह्यस्थित देवोंकी सहायतासे ही हमारे शरीरकी शक्ति बढती रहती है। बाहरके प्राणवायुकी सहायतासे हम अपने प्राणोंकी शक्ति बढा सकते हैं, बाहरके सूर्यप्रकाशसे हमारे नेत्रोंका बल बढता रहता है। बाहरके जलतत्त्वसे हमारे शरीरका जल-तत्त्व व्यवस्थित रह सकता है। बाहरका अन्न खाकर ही हम जीवित रहते हैं। इस प्रकार बाहरके विश्वमें स्थित इन देवोंकी सहायतासे हम अपने शरीरकी शक्ति एवं अन्तः-करणकी शक्ति बढा सकते हैं। यह शक्ति जिस अनुपातसे बढेगी और जिस अनुपातसे वह हमारे आधीन रहेगी उसी प्रमाणसे हमारी आत्माकी शक्ति भी अभिव्यक्त हो सकती है।

अपनी इन शक्तियोंके अभिव्यक्तिकरणका अनुष्ठान करने के लिये ही समस्त योगसाधनोंका निर्माण किया गया है। जब तक इस शरीरको देवमन्दिर माना जाता था और जबतक बाहरके विश्वव्यापक देवोंका एवं अपने शरीरमें स्थित शक्तियोंका सम्बन्ध लोगोंको मालूम था तब तक यहां की दिव्य शक्तियोंकी अभिवृद्धि करनेका अनुष्ठान लोग किया करते थे। किन्तु यह उच्च कल्पना तो समाप्त हो गई और इस देहको ' मूत्रविण्मूत्रका गोला ' माना जाने लगा, जिसके कारण इस शरीरके विषयमें मनमें घृणा उत्पन्न हुई। परिणाम यह हुआ कि इसके बाद शारीरिक एवं अन्तःकरण सम्बन्धि शक्तियोंको बढानेका अनुष्ठान स्वयमेव बंद हो गया। मूत्रविण्मूत्रके गोलेकी शक्ति भला कौन बढायेगा और किस लिये ?

हमने ऐसे आदमी देखे हैं कि जो अपने शरीरके विषयमें सदैव निन्दात्मक भाषण करनेमें ही अपना भूषण मानते हैं। ऐसा करनेसे वे समझते हैं कि हम बडे भारी ज्ञानी हैं। अनेक साधुसंतोंके साहित्यमें भी इसे ' विण्मूत्रका गोला ' आदि कहा गया है। ये विचार जैन और बौद्धोंने आरम्भ किये और उन्हींका अनुसरण अन्य विचारकोंने किया। शरीरके सम्बन्धमें विण्मूत्र गोलेकी कल्पना इन साधुसन्तोंके प्रचारके कारण आज आबालवृद्धोंमें फैली हुई है। कथा-प्रवचनकारोंके प्रवचनोंमें पूर्वक्रममें यही प्रतिपादन किया जाता है। इस प्रकारकी इन असमञ्जस कल्पनाओंका यह प्रचार हजार डेढ हजार वर्षोंसे इस देशमें प्रचलित है और आज तो यह कल्पना दृढमूल हो चुकी है। प्राचीन कालके विचार कितने ऊंचे थे और वे ही बादमें कितने विपरीत दिशामें बदल गये, इसका विचार हमें करना चाहिये। हमें देवमन्दिरमें रहना है अथवा शौचकूपमें गिरना है ? इसका निर्णय आज हमें करना है। ऐसा करने पर स्वयं ही निर्णय हो जाएगा कि हमें किन विचारोंको मानना है। और भी देखिये—

सप्तऋषियोंका आश्रम

इस शरीरको ऋषिगण ' सप्तऋषियोंका आश्रम ' मानते थे। देखिये—

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे, सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्। सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः तत्र जाग्रतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।
(वा. य.)

" सप्त ऋषि प्रत्येक शरीरमें हैं। ये सात ऋषि प्रमाद न करते हुए इस यज्ञशालाका रक्षण किया करते हैं। यहाँपर सात नदियाँ भी हैं, वे सोते समय सोनेवालेके स्थानकी ओर बहा करती हैं और जागते समय बाहरकी ओर बहा करती हैं। वहाँ दो देव जागकर इस आश्रमका रक्षण किया करते थे। "

इस मन्त्रमें इसी शरीरको ' सप्तऋषियोंका आश्रम ' कहा गया है। यह कल्पना कितनी उदात्त, पवित्र और उच्च है। यह शरीर मानो तपोभूमि है जहाँ सात नदियां बह रही हैं। इन नदियोंके पवित्र संगमस्थानपर सात ऋषि तप करते हुए बैठे हैं। इस प्रकारका यह सप्तर्षियोंके पवित्र-तपसे पुनीत हुआ आश्रम है।

ऋषि लोग ज्ञान लिया और दिया करते हैं। यहाँ मस्तकमें दो आँखें, दो कान और दो नासापुट तथा एक मुख ये सात ऋषि हैं। ये सब ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं तथा ज्ञान दे रहे हैं। इनका यह ज्ञान-व्यवहार निरन्तर जारी है। ये ऋषि हैं जो दूरका देखा करते हैं तथा यदि वह भविष्य भयप्रद हो तो उस विषयमें ये मनुष्यको सावधान किया करते हैं। वे यदि संयमी हुए तो ये ही ऋषि और देव बन जाते हैं तथा मनुष्यके लिये बडे लाभदायी सिद्ध

हो जाते हैं; किन्तु यदि ये भोगी हो गये तो ये ही राक्षस बन जाते हैं। भोगी एवं संयमीका ही भेद राक्षस और देवोंमें है।

दशरथ एवं दशमुख

इसके लिये एक उदाहरण प्रस्तुत करने जैसा है। हमारे यहाँ दशरथ-दश इन्द्रियोंका संयम करनेवाला-राजा है और उसका पुत्र 'राम' सबको आनन्द देनेवालेके रूपमें प्रसिद्ध है। यह देव है। संयमका फल देवत्व है। दूसरा भोगी दशमुख रावण है। यह इन्द्रियोंसे भोग भोगनेवाला तो है, किन्तु रावण अर्थात् 'रोनेवाला' है। उसके पल्ले रोनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसकी लङ्का जलकर खाक हो जाती है और अन्तमें इसका भी सम्पूर्ण विनाश हो जाता है। वह असुर या राक्षस है, क्योंकि असंयमका यही निश्चित परिणाम होता है। संयमसे ऋषि या देव बना जा सकता है। भोगसे यदि प्रथम सुख मालूम हो तब भी अन्तमें रोना पडता है और सर्वस्वनाशका दुःख भोगना पडता है। यही कारण है कि 'इस शरीरको ऋषियोंका आश्रम कहा गया है और यहाँपर इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह और तप करना है' आदि बातें सूचित की गई हैं। नरका नारायण होनेका यही मार्ग है। वह इसी शरीरमें किया जा सकता है; अतएव यह ऋषियोंका आश्रम है।

दो देवोंका जागृत पहरा

सात नदियोंके प्रदेशका अन्वेषण संशोधक लोग पंजाबसे अफगानिस्तान तक कर रहे हैं। किन्तु उन्हें इन नदियोंका कहीं पता नहीं चलता। वहाँ सात नदियाँ हैं ही नहीं, फिर मिलेंगी कैसे? इन नदियोंका उल्लेख हमने ऊपर किया है। ये ही वे सात नदियाँ हैं। यह सात नदियोंका पवित्र प्रदेश है। इस प्रदेशमें सप्त ऋषियोंका यह आश्रम है। यहाँ दो देव सदैव जागृत रहकर इस आश्रमका राक्षसोंके आक्रमणसे संरक्षण किया करते हैं। ये 'दो देव' हैं 'श्वास और उच्छ्वास'। शरीरकी रक्षा करनेवाले ये दो पहरेदार हैं। इस आश्रमकी रक्षा करनेके लिये ये दो देव सदैव पहरा देते हुए खडे हैं। ऋषियोंका यज्ञ निर्विघ्न रूपसे पार हो, इस लिये ये दो देव सतत जागृत पहरा दे रहे हैं।

ऋषि आश्रमकी यह कल्पना कितनी उत्तम, पवित्र एवं आनन्ददायिनी है यह हमें देखना है और इसके साथ इस शरीरको, इस जीवको कैदीकी जो उपमा दी जाती है उससे इसकी तुलना करनी है। ऐसी निन्द्य कल्पनायें आज हमारे समाजमें घर कर गई है। इन दो कल्पनाओंमेंसे कौनसी कल्पना हमें स्वीकारनी चाहिये?

द्वारका और अयोध्या

और एक वैदिक कल्पना देखिये। यहाँपर द्वारका एवं अयोध्या नामोंसे इसी शरीरका वर्णन किया है—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽवृतः ॥३१॥
तस्मिन् हिरण्मये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यत् यक्षं आत्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ३१
प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा संपरिवृताम्।
पुरं हिरण्मयीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम् ॥ ३ ॥
अथर्व १०।२

"आठ चक्र एवं नौ द्वारवाली यह देवोंकी नगरी अयोध्या है। इसमें तेजस्वी स्वर्ण और सुवर्णका कोश भरपूर है। इस सुवर्ण नगरीमें एक आत्मा है, जिसे ब्रह्मज्ञानी लोग जानते हैं। यह नगरी तेजस्वी, यशस्वी, मनोहारिणी, सुवर्णमयी एवं अपराजित है। इस नगरीमें विजयी ब्रह्मा प्रवेश करता है, वह वहाँ राज्य करता है।"

यह नगरी नौ द्वार होनेके कारण द्वारावती अथवा 'द्वारका' है और इसका पराभव कभी भी नहीं होता इसलिये यह 'अयोध्या' है। यह सुवर्णकी तेजस्वी देवनगरी है। यह हमारे शरीरका वर्णन है। इसे यहाँपर (देवानां पूः) देवोंकी पुरी कहा गया है। अनेक देव यहाँ आकर रहा करते हैं। कौनसा देव कहाँ आकर रहता है, इसका वर्णन पूर्व किया जाचुका है। यह देवनगरी, यह स्वर्ग, यह ब्रह्मलोक, यही अमरावती और यही अयोध्या है। कितनी ऊंची कल्पनायें इस शरीरके विषयमें वेदमन्त्रोंमें वर्णित हैं। हमारा शरीर इतना सुन्दर है। स्वर्गका सुख हमें यहींपर प्राप्त हो सकता है। देवोंके साथ यहीं पर निवास किया जा सकता है। यहीं ब्रह्मसुखका अनुभव किया जा सकता है। ऐसा है यह हमारा शरीर। यह दीन या तुच्छ तो

कदापि नहीं हो सकता। जो देवोंकी नगरी है वह भला हीन दीन क्यों होने लगी?

आज इसी शरीरको मलिन, क्षणभङ्गुर और दुःखकारण माना जाने लगा है; किन्तु उपर्युक्त वेदमन्त्रोंमें इसे स्वर्ग कहा गया है। वेदोंके इसी स्वर्गको आज मलोंका आगार, दुःखदायी, और क्षणभङ्गुर माना जाने लगा है। दो विभिन्न कालोंमें कल्पनाका कितना बडा अन्तर पड गया है !!

कुरुक्षेत्र

यह शरीर कुरुक्षेत्र है। इस स्थानपर आकर यज्ञ करनेकी इच्छासे समस्त देव आकर बसते हैं और सौ वर्षोतक यज्ञ करते हैं। इस प्रकारकी यज्ञभूमि यह शरीर है। समस्त देवोंद्वारा मिलकर चलाया हुआ यज्ञ यहाँपर प्रचलित है। वह यह बीचमें बिनाविघ्न हुए उत्तम रीतिसे सफल होना चाहिये।

कुरुक्षेत्रं वै देवानां देवयजनं (जाबाल उ. १)

'यह शरीररूपी कुरुक्षेत्र देवोंके यज्ञकरनेका यज्ञक्षेत्र है' देव यहाँ आते हैं और शतसांवत्सरिक यज्ञ करनेके लिये अपने अपने स्थानोंपर बैठते हैं। यज्ञमें अनेकोंकी अपमृत्यु होनेके कारण बीचमें ही यज्ञ नष्ट हो जाता है। यहाँ जो १२० वर्ष तक जीवित रहेगा वह शतसांवत्सरिक यज्ञ पूर्ण कर सकता है। 'पुरुषः वै यज्ञः' यह मनुष्य रूपी जो पुरुष है वही यज्ञ है। मनुष्य स्वयं यज्ञ है। मनुष्यका शरीर कुरुक्षेत्र है। समस्त देव यहाँ आते हैं और यज्ञ करते हैं। इस प्रकार मनुष्यका जीवन यज्ञमय होना चाहिये।

उपर्युक्त कथनका यही एकमात्र अभिप्राय है कि मनुष्य का समस्त जीवन यज्ञमय हो। ईश्वरका अंश और ३३ देवोंके अंश ये सब यहाँ पर उपस्थित होते हैं। वे यह निश्चय करते हैं कि यज्ञ करना चाहिये और इसके लिये इस शरीररूपी यज्ञभूमिको तैयार करते हैं। इतनी ऊची कल्पना जीवनके विषयमें यहाँ की गई है।

अब तक हमने शरीरके विषयमें जिन वैदिक कल्पनाओंका उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं- मैं पुरुषोत्तम हूँ, ब्रह्म हूँ, इन्द्र हूँ। मेरा शरीर देवमन्दिर है, यह ऋषियोंका पवित्र आश्रम है, सप्त नदियोंका यह पवित्र तीर्थ है, यह यज्ञभूमि है, पवित्र कुरुक्षेत्र है। पाठक इन कल्पनाओंको अपने मनमें रखें और उसके पश्चात्-

यह शरीर पूयविण्मूत्रका गड्ढा है, यह तुरङ्ग है, यह अमङ्गल है। मैं पापी हूँ, मेरा जीवन पापपूर्ण है, मेरे पाप संकल्प हैं, मेरी उत्पत्ति पापसे है, मैं दीनहीन दुर्बल और अपराधी हूँ। मैं यहाँ कारावासमें पडा हुआ कैदी हूँ। यह विश्व एक बडा कारागृह है, मैं उसमेंका एक कैदी हूँ, यह सब क्षणभङ्गुर है, यह सब दुःखमय है, ये प्रचलित कल्पनायें हम देखें और हमारा जीवन किस भूमिपर आधारित है इसका विचार करें।

जैसे विचार वैसे आचार

जैसे हमारे विचार होते हैं वैसे ही हमारे आचरण होते हैं। जैसे- मान लीजिये कि हम एक गांवमें गये और वहाँ पता लगा कि इस गांवमें महामारीका भयङ्कर उपद्रव है। यह सुनते ही हम तत्काल वहाँसे भाग कर अन्यत्र जानेका प्रयत्न करेंगे। किन्तु यदि हमें यह पता लगे कि हम ऋषिके एक पवित्र आश्रममें आ गये हैं और इस आश्रममें रहनेपर ही हमारे सम्पूर्ण रोग दूर होंगे और पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होगा तो हम वहाँपर यावच्छक्य अधिक ठहरनेका प्रयत्न करेंगे।

चोरोंके गांवमें हम मुकाम नहीं करेंगे। अपितु ऋषियोंके आश्रममें सर्वथा निश्चिन्त होकर रहेंगे। हमारे विचारोंका आचरणपर ऐसा प्रभाव पडता है। हम चाहे जितने उदासीन वृत्तिसे इन विचारोंकी ओर देखें तथापि हम यह अवश्य अनुभव करेंगे कि गत दो हजार वर्षोंमें अनेक प्रचारकोंद्वारा क्षणभङ्गुर संसार, यह असार संसार, सर्व-क्षणिक, सर्व दुःखं, यह शरीर पूयविण्मूत्रका गोला है, पापमूलक जन्म, शरीर तुरङ्गवास है आदि जो कुकल्पनायें हमारे अन्दर फैलाई गई उनका अनिष्ट परिणाम हिन्दुओंके सूक्ष्म मनपर हुआ है। यही कारण है कि आजका हिन्दु इह लौकिक सुखोंके विषयमें निरुत्साहित हो गया है, उसे यह जीवन दो दिनोंका लगता है। किन्तु वेद तो 'भूयश्च शरदः शतात्' ऐसा कहता है। कोई भी मनुष्य ऋषि आश्रम अथवा देवमन्दिरमें सौ वर्षोंसे भी अधिक रहनेकी इच्छा करेगा। किन्तु शौचकूपमें किसीकी भी इच्छा अधिक देरतक रहनेकी न होगी। हमने उच्च वैदिक कल्पनाओंका परित्याग कर दिया। वास्तवमें ये कल्पनायें

कितनी ऊंची थी ? किन्तु हमने उनका परित्याग कर दिया और अवैदिक कल्पनाओंको मनमें स्थान दिया। परिणाम स्वरूप इनका यदि हमारे जीवनपर भी अनिष्ट परिणाम हुआ तो इसमें आश्चर्यकी कौनसी बात है। हिन्दुओंका मन इन कलुषित कुविचारोंसे यह इस प्रकार भर गया है और वे आजकी हीनस्थितिको प्राप्त हो गये हैं। इस स्थितिको यदि दूर करना है तो हमें अपने मनके उन कुविचारोंको आमूलाग्र बदल देना चाहिये।

त्यागमय जीवन

हमारी वर्तमान त्यागकी कल्पनाने मूलकी त्यागकी कल्पनाको भी विकृत कर दिया है, 'त्यक्तेन भुञ्जीथाः' (वा. य. ४०।१) 'त्यागसे भोग कर' ऐसा वैदिक ऋषियोंका जो कथन था। किन्तु उनका त्याग और उनकी निवृत्ति संसारका उच्छेद करनेवाली नहीं थी। देखिये-

अनेक स्त्रियोंसे सम्बन्ध करनेकी जो प्रवृत्ति थी उसका निवारण विवाहके विधानद्वारा किया गया। अर्थात् विवाह निवृत्तिमार्गका ही एक स्वरूप है और त्याग ही है। आज तो संन्यास लेकर सन्तान परम्पराका उच्छेद करनेको ही निवृत्ति कहा जाता है। किन्तु यह निवृत्ति राष्ट्रका घात करनेवाली है। जब तक इस निवृत्तिका पालन एक या दो करते हैं तभी तक यह ठीक है; किन्तु यदि सभी लोग इस संन्यास धर्मका पालन करने लगे, तो साराका सारा राष्ट्र तत्काल नष्ट हो जावेगा। यही स्थिति अन्य त्यागोंके विषयमें है। उदाहरणार्थ देखिये—

यदि हम वस्त्रधारण करना छोड दें तो जुलाहे मर जायेंगे, घरमें नहीं रहना है, ऐसा निश्चय करलें तो राज और बढई मरने लगेंगे। जबतक इस त्यागका आचरण सब लोग नहीं करते तभी तक इनका प्रतिपादन या कथन भला मालूम होता है। किन्तु यदि सबके सब उसपर आचरण करने लग जांय तो इससे राष्ट्रकी अधोगति हुए बिना कदापि न रहेगी।

वैदिक निवृत्ति समर्याद होनेके कारण राष्ट्रोन्नतिके लिये पोषक थी। आगे जाकर बौद्धयुगमें उसे अमर्यादित किया गया। इसका कारण यह था कि बुद्धोत्तर कालमें इस जगत् के विषयमें और अपने शरीरके विषयमें अत्यन्त हीन कल्पना निर्माण हो गई और इस संसारका त्याग किये बिना हमारी आत्मोन्नति हुई हो सकती, ऐसे असत्य विचार रूढ होगये। इस कारण सर्वस्व त्याग ही यदि जीवनका ध्येय बन गया हो तो उसमें कोई अस्वाभाविकता नहीं है।

जो अपना ध्येय सर्वस्व त्याग बनाता है उसके द्वारा इस संसारका क्या भला हो सकता है ? लोग पूर्णतः सर्वस्व त्याग नहीं करते। इसीलिये उनके द्वारा लोकोन्नतिका थोडा बहुत कार्य हो जाता है। अस्तु। अब हम एक पराकाष्ठातक पहुँची हुई विपरीत विचारसरणी पर थोडासा प्रकाश डालेंगे।

निवृत्तिमार्गका ज्ञान

उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता ये तीन ग्रन्थ प्रस्थानत्रयीके हैं। इसलिये बडे बडे आचार्योंने यह लिख रखा है कि जब पुत्र बडा हो जाय, घरबार सम्भाल ले, तब गृहस्थका भार लडकेपर डालकर फिर इन ग्रन्थोंका अध्ययन करें। देखिये—

> गर्भाधानादि-संस्कार-संस्कृतं अधीतवेदं जनितसुतं अनुष्ठितयज्ञं निस्पृहं मुमुक्षुं शिष्यं पुत्रं वा ऋषिरुपदिशन् आह। ईशावास्यमिति।
>
> उवट, महीधर भाष्य

जिसके गर्भाधानादि संस्कार हो चुके हैं, जिसने वेदोंका अध्ययन किया है, जिसके लडके हो चुके हों, जिसने यज्ञ किये हैं, जो निरिच्छ है, जिसे केवल अपनी मुक्ति प्राप्त करनेकी इच्छा है ऐसे शिष्यको अथवा पुत्रको ऋषि उपदेश करते हैं।'

पुत्र उत्पन्न होनेपर तथा उनके बडे हो जानेपर, सांसारिक समस्त इच्छायें तृप्त होजानेपर जिसकी केवल मुक्त होजानेकी इच्छा हो, अर्थात् घर गृहस्थीमें जिसके लिये कुछ भी करना शेष न रहा हो, ऐसे व्यक्तिको ईश उपनिषद् सीखना चाहिये। यहाँ और बातें छोड भी दी जावें तो महत्वपूर्ण बात ध्यान देने जैसी है और वह यह कि '**पुत्र उत्पन्न होजानेपर तथा इसके पश्चात् पुत्र होनेकी सम्भावना न रहनेपर इस अध्यात्मज्ञानका अध्ययन करे।**' पुत्र उत्पन्न होजानेपर ईशोपनिषद् सीखें तथा अन्य गीता, उपनिषदादि ग्रन्थ सीखें, ऐसा

उक्त आचार्योंका अभिप्राय दिखाई देता है। यदि यह बात सत्य मान ली जावे तो उसका क्या परिणाम होगा, यह देखिये—

ब्रह्मज्ञानका परिणाम सुप्रजा

बृहदारण्यक उपनिषद्‌में समस्त उपनिषद् विद्याओंका उपदेश कर देनेके पश्चात् 'सुप्रजा-जनन' की विद्या कही गई है। सुप्रजाजननके लिये मातापिता कैसा व्यवहार करें, क्या खायें, क्या पढें, मनमें कैसे विचार धारण करें, जिससे निःसंशय इष्टसन्तति निर्माण की जासके। जिस प्रकारकी सन्तति निर्माण करना चाहें उस प्रकारकी सन्तति निर्माण की जासकती है। यही आशय इस अन्तिम अध्यायका है। ज्ञानी, शूर, व्यवहारकुशल, एक या चारों वेदोंका ज्ञाता, जैसा चाहें वैसा पुत्र उत्पन्न किया जासकता है। यही बातें इस उपनिषद्‌के अन्तमें वर्णन की गई हैं। यदि पुत्र उत्पन्न करनेके पश्चात् ब्रह्मविद्या सीखनी हो तो इस अध्यायकी बृहदारण्यक उपनिषद में होनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। किन्तु वह अध्याय वहाँपर है। अथर्ववेद भी उसका समर्थन करता है—

यो वै तां ब्रह्मणो वेद अमृतेनावृतां पुरिम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च आयु प्राणं प्रजां ददुः॥
(अथर्व० १०।२।२९)

'जो इस अमृतसे भरी हुई ब्रह्मपुरीको जानता है, उसे ब्रह्मकी कृपासे दीर्घ आयुष्य, निरोग शरीर, एवं सुप्रजा प्राप्त होती है।' अथर्ववेदने ब्रह्मज्ञानका यह फल लिखा है। यहाँपर ब्रह्मकी कृपासे जो प्रजा होगी वह दत्तक तो नहीं होगी !! वह तो औरस सन्तति ही होगी; इसीलिये औरस सन्तति होनेके समयसे पूर्व यह ब्रह्मज्ञान उन स्त्री-पुरुषोंको होना चाहिये। यह है वास्तवमें वेद और उपनिषदोंका कथन। सुप्रजाकी प्राप्ति तो ब्रह्मज्ञानी पुरुषोंको हुआ करती है। यही तो ब्रह्मज्ञानका फल है। प्राचीन वैदिक परम्परा ब्रह्मज्ञानका परिणाम सुसन्तती होना बताती है और आचार्य कहते हैं कि सन्तती होनेपर संसार त्याग करना चाहिये तथा उसके पश्चात् उपनिषदोंका अध्ययन करें। अब हमें सचमुच किसकी बात माननी चाहिये ?

विचारोंका यह इस प्रकारका भयङ्कर परिवर्तन हुआ है जो कदापि उपेक्षणीय नहीं माना जाना चाहिये।

विचार करके तो देखिये

अब हम प्रमाणवचनोंको छोडकर इस बातपर यहाँ विचार करेंगे। मातापिता सुशिक्षित, ज्ञान-विज्ञान-सम्पन्न व सदाचारी, ब्रह्मनिष्ठ एवं ब्रह्मज्ञानी हों तो उनकी सन्तानें अवश्य ही उत्तम होंगी, इसमें किंचिन्मात्र भी संशय नहीं है। वेद और उपनिषदोंका यही ध्येय था। यह बात उपर्युक्त वचनोंसे स्पष्ट सिद्ध होती है। प्रथम आयुमें कन्या और पुत्र उत्तम ज्ञान प्राप्त करें, समस्त अध्यात्मज्ञानका अध्ययन भी करें और फिर उनका विवाह हो,

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्। (अथर्व)

इस प्रकार विवाह हो जानेके पश्चात् वे बृहदारण्यकोपनिषद्‌के कथनानुसार, ध्येयनिष्ठापूर्वक, मैं अमुक प्रकारकी सन्तती निर्माण करूंगा, ऐसा संकल्प करके उसके लिये अपेक्षित नियम-बन्धनोंका पालन करके उत्तम सन्तती निर्माण करें। ब्रह्मविद्याका यही फल है। 'अथर्ववेद एवं बृहदारण्यक उपनिषद् जो कहते हैं वह सत्य है' ऐसा विचार करनेपर स्पष्ट प्रतीत होता है।

किन्तु आज तो हम इसके सर्वथा विपरीत मानने लगे हैं। मान लीजिये कि हम उपर्युक्त विचारोंके अनुसार पुत्रपर संसारका सब भार डालकर उपनिषदोंका अध्ययन प्रारम्भ करें और फिर १० वर्षोंमें ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति हो तो ९० वें वर्ष ब्रह्मकी कृपा होनेपर भी औरस सन्तती उत्पन्न करनेकी सम्भावना ही नहीं रहती तथा दत्तक पुत्र प्राप्त करनेके लिये फिर ब्रह्मकी कृपाकी भी आवश्यकता बिल्कुल नहीं रहती।

मैंने वेदान्त विषयके एक प्राध्यापकसे यह प्रश्न किया कि 'बृहदारण्यक उपनिषद्‌के अन्तमें यथेष्ट पुत्र उत्पन्न करनेका अध्याय है, उसका क्या प्रयोजन ? तथा उसका आध्यात्मिक तत्वज्ञानसे क्या सम्बन्ध ?' इसका उत्तर उन्होंने यह दिया कि 'बृहदारण्यक शतपथमेंसे लिया गया और चूंकि शतपथमें वह अध्याय था, इसलिये बृहदारण्यक में भी वह आ गया। इस अध्याय और तत्वज्ञानका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

अर्थात् इनके मतसे बृहदारण्यक उपनिषद्‌का संघ अज्ञानी था तथा अनजानेमें उन्होंने वह अध्याय यहाँपर ले लिया। ऐसे लोग हमारे विद्यार्थियोंको तत्वज्ञान सिखावें,

हमारे विद्यार्थी सीखें और उसकी तेजस्विता संसारमें फैलावें। कितनी शोचनीय स्थिति है यह !

आचरणके लिये ही तत्त्वज्ञान

वास्तविक परिस्थिति यह है कि तत्त्वज्ञानका अस्तित्व मनुष्यके आचरणमें उतारनेके लिये ही है। तत्त्वज्ञान केवल वादविवादका विषय नहीं है। मनुष्यके आचरणमें उतरकर मनुष्यका निर्माण तदनुरूप होना चाहिये। मानवी आचरण पवित्र एवं शुद्ध होना चाहिये। नरका नारायण बनना चाहिये। इसे आदर्श स्थिति प्राप्त करनी चाहिये। क्योंकि इसीलिये प्रत्येक आर्यशास्त्रमें अध्यात्मशास्त्र गुम्फित किया गया है। मनुष्यका जीवन ही इस ज्ञानद्वारा पवित्र बनना चाहिये।

आज गीता और उपनिषदोंके अध्यापनवर्ग चालू हैं। किन्तु उनमें वे लोग आते हैं जो पेन्शनर हैं, जिन्हें आंखोंसे बराबर दिखाई नहीं देता और कानोंसे बराबर सुनाई नहीं देता। जिसके शरीरमें पुरुषार्थ करनेकी शक्ति शेष नहीं है। प्रायः ऐसे ही लोग गीताका अध्ययन किया करते हैं। किन्तु मूल जिस गीताका उपदेश किया गया वह भारतके युवक वीर अर्जुनको किया गया था। उपदेश करनेके समय भगवान भी युवक ही थे। एक युवक द्वारा दूसरे युवकके लिये उपदिष्ट ग्रन्थ आज गलितगात्र वृद्ध पढते हैं। भारतीय युद्ध समाप्त हो जानेके पश्चात् अर्जुनने ३० वर्षोंतक राज्यका संचालन किया था और आन्तरिक एवं बाह्य शत्रुओंका विनाश किया था। अर्थात् गीता एवं उपनिषद् जैसे ग्रन्थ इसी आयुमें आत्मसात् करने चाहिये कि इस आयुके पश्चात् कमसे कम ३०-४० वर्षोंतक जनसेवा एवं राष्ट्रसेवा करनेकी शक्ति हममें रहे।

युद्धोत्तरकालमें स्वयंकी तुच्छता व्यक्त करनेकी रूढी हो गई थी जो आजतक भी प्रचलित है। यह रूढी समाप्त होनी चाहिये। मेरा अर्थात् व्यक्तिका स्वरूप क्या है ? उसकी शक्ति कितनी है ? उसकी कार्यक्षमता कितनी है ? तब इसकी सुन्दर कल्पना युवकोंको हो सकती है। इसी दृष्टिकोणसे आजका पाठ्यक्रम निर्धारित होना चाहिये। अर्थात् स्नातक होनेसे पूर्व उसे अध्यात्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान एवं भौतिक विज्ञान प्राप्त होना चाहिये। ऐसे ज्ञानसे युक्त तरुण भारतीय ज्ञानका प्रसार विश्वमें कर सकते हैं, जिससे भारतीय तत्त्वज्ञानकी विशेषता संसारके सामने आ सकती है।

अध्यात्मज्ञान एवं राष्ट्रीय जीवन

यदि अध्यात्मज्ञान व्यक्तिगत जीवनका अवलम्ब बन जाय तो उसके द्वारा मानवी जीवनमें अभ्युदय-निःश्रेयसकी सिद्धि हो सकती है। अबतकके विवरणसे यही निष्पन्न होता है। अब हमें यह देखना है कि यही अध्यात्मकी भूमिका राष्ट्रोन्नतिके लिये किस प्रकार सहायक हो सकती है।

(२) अध्यात्मज्ञानसे राष्ट्रीय उन्नति

ऐसा प्रतीत होता है कि अध्यात्मज्ञान आर्योंके जीवनोपयोगी समस्त शास्त्रोंके आधारस्थानपर विराजित था। प्रत्येक आर्यशास्त्रके आधार स्थानपर अध्यात्मशास्त्रका आधिपत्य अवश्यमेव होगा। महाभारतके युद्धसे पूर्व जिस गीताशास्त्रका उपदेश किया गया था, वह अध्यात्मशास्त्र ही माना गया है। गीताशास्त्रका श्रवण करके अर्जुनका मन यदि शुद्ध न हुआ होता तो वह वनमें जाकर, कन्द-मूल-फल खाकर हरिहरि जपता हुआ अपना जीवन समाप्त कर देता। क्योंकि गीता श्रवणसे पूर्व उसने अपना यही निश्चय कर लिया था।

श्रीरामचन्द्रकी दैववादी प्रवृत्ति दूरकरके, पुरुषार्थ द्वारा सबकुछ प्राप्त कर लेनेकी उत्साही प्रवृत्ति उत्पन्न करनेका समस्त श्रेय 'योगवासिष्ठ' नामक अध्यात्मग्रन्थको ही देना चाहिये। इस ग्रन्थका उपदेश सुनकर श्रीरामचन्द्र दैववादको छोडकर पक्के पुरुषार्थी बन गये।

जिस प्रकार गीताका श्रवण करनेके पश्चात् अर्जुनने कौरवोंकी साम्राज्यशाही को समाप्त कर दिया और अपने राज्यकी फिरसे स्थापना की, उसी प्रकार योगवासिष्ठका उपदेश सुनकर श्रीरामचन्द्रने अपने दैववादी विचार दूर फेंक दिये और अपने अन्दर प्रयत्नवादी विचारोंका उदय करके रावण साम्राज्यका विनाश कर दिया। ३३ कोटि देवोंको रावणकी बन्दिशालासे मुक्त कराया और रामराज्यकी स्थापना की। इस रामराज्यकी प्रशंसा सारा विश्व आजतक करता आ रहा है।

दो स्थानोंपर अध्यात्मशास्त्रका उपदेश दिया गया और दोनों ही स्थानोंपर राष्ट्रीय दृष्टिसे सर्वाङ्गीण उन्नति हुई, यह बात स्पष्ट दिखाई देती है। इससे यह सिद्ध होता है कि अध्यात्मशास्त्र राष्ट्रीय उन्नतिके लिये साधक है।

शान्तिकी स्थापना

संसारको और मनुष्यमात्रको शान्ति चाहिये। मनुष्य शान्तिके लिये छटपटाया करता है। वह युद्ध भी इसीलिये करता है कि जिससे शान्ति स्थापित हो सके। यदि उसके इन प्रयत्नोंके बावजूद युद्ध होते हों तो हों; किन्तु उसका ध्येय शान्ति ही रहता है। यह शान्ति तीन प्रकारकी है। एक वैयक्तिक शान्ति, दूसरी राष्ट्रीय शान्ति और तीसरी जागतिक शान्ति। इस प्रकार इन तीनों शान्तियोंकी स्थापना इस धरतीपर होनी चाहिये। वैयक्तिक शान्ति अन्तःकरण एवं शरीरमें होनेवाली शान्ति है। दूसरी राष्ट्रीय शान्ति है जो राष्ट्रमें हुआ करती है। अर्थात् राष्ट्रमें गुण्डोंका चोर और डाकुओंका, व्याघ्रादि पशुओंका उपद्रव न हो, रोग न फैलें इत्यादि राष्ट्रीय शान्ति है। जागतिक शान्तिका अर्थ यह है कि जगत्‌में युद्ध न हों तथा अन्य जागतिक अशान्तिके कारण दूर हों। इन तीनों प्रकारकी शान्तियोंकी इच्छा मनुष्योंके अन्दर है। जनता एतादृश शान्तिके लिये आज अत्यन्त आतुर है। इसीलिये भारतीयोंके प्रत्येक धर्म-कार्योंके अन्तमें "ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः" ऐसा कहा जाता है। यह रूढी हजारों वर्ष प्राचीन है। हम जो कुछ करते हैं वह इन तीनों शान्तियोंकी स्थापनाके लिये करते हैं। इस रूढीका यही अर्थ है।

समस्त उपनिषदोंके प्रारम्भ एवं अन्तमें इन तीनों शान्तियोंका उच्चारण अवश्य करना चाहिये, ऐसी अनादि कालसे प्रचलित प्रथा है।

किन्तु हमने तीन शान्तियोंका उच्चारण किया, इसका यह अर्थ नहीं होता कि हमने इन तीनों शान्तियोंकी स्थापनाका कार्य कर लिया। क्या यह सब करनेका दायित्व हमपर है? इस प्रश्नपर हम यदि गम्भीरतासे विचार करें तो यह स्पष्ट विदित हो जावेगा कि इन तीनों शान्तियोंकी स्थापनाका वास्तविक उत्तरदायित्व बहुत कम व्यक्ति अनुभव करते हैं और उस उत्तरदायित्वको निभानेकी शक्ति भी बहुत कम लोगोंपर है।

जागतिक शान्ति

आज जागतिक शान्ति स्थापन करनेके कार्यको पूरा करनेकी शक्ति केवल दो पुरुषोंमें ही है। एक है रशियाका अध्यक्ष स्तालिन और दूसरा है अमेरिकाका अध्यक्ष ट्रुमैन। ये दोनों यदि मिल जांय और सोच लें तो शान्ति स्थापित हो सकती है और यदि वे सोच लें कि युद्ध करेंगे तो इस सारी पृथ्वीपर युद्ध भड़क सकते हैं।

राष्ट्रीय शान्ति

दूसरी शान्ति राष्ट्रीय है। केवल भारतके विषयमें यदि कुछ कहना हो तो यहाँपर श्री जवाहरलाल नेहरू शान्ति स्थापना कर सकते हैं। विदेशसे युद्ध करना या न करना आज उनकी अनुमतिपर निर्भर है। सर्व साधारण जनता आज चाहे जितना हल्ला मचावे तब भी कुछ होना जाना नहीं है। श्रीनेहरू युद्ध करनेका यदि निश्चय करलें तो भारत राष्ट्र युद्धमें समा सकता है। जबतक वे यह कहते हैं कि 'हमें युद्ध नहीं करना है' तभीतक शान्ति रह सकती है। राष्ट्रीय शान्ति भी इस प्रकार बिल्कुल गिनेचुने लोगोंके हाथमें रहा करती है।

जागतिक शान्ति एवं राष्ट्रीय शान्ति दोनों ही राज्याधिकारियों द्वारा ही सम्भव है और यदि वे चाहें कि युद्ध हो तो युद्ध भी उन्हींकी इच्छापर अवलम्बित है। अर्थात् युद्ध एवं शान्ति उन्हींकी इच्छापर अवलम्बित रहनेवाली बात है। सदैव ऐसी परिस्थिति रहा करती है। महाभारतका युद्ध अकेले दुर्योधनके दुराग्रहके कारण हुआ और लंकाका युद्ध भी अकेले रावणके हठके कारण हुआ। अन्य बड़े बड़े पुरुषोंका सारा शान्तिप्रयास व्यर्थ ही गया।

वैयक्तिक शान्ति

वैयक्तिक शान्ति व्यक्तिके अन्तःकरणमें स्थापित करनी होती है; अतः यह प्रत्येक व्यक्तिके अपने अधिकारकी बात है, ऐसा यदि हम कहें तो वह भी सत्य नहीं है। क्योंकि अन्तःकरणकी शान्ति योगसाधनादि द्वारा हुआ करती है और योगसाधन 'सुभिक्षे धार्मिके राज्ये' जहाँ सस्ताई और धार्मिक राज्य हो वहीं सम्भव है। चाहे जहाँ-पर योगसाधन सम्भव नहीं है और इसीलिये चाहे जहाँ वैयक्तिक शान्ति भी सम्भव नहीं है।

जहाँपर खून, रक्तपात, अग्निकाण्ड, लूट और डाकेजनी होती हो, जहाँकी राज्यव्यवस्था अशान्तिको रोकनेमें समर्थ न हो वहाँ कोई भी किस प्रकारसे योगसाधन कर सकेगा? ऐसे अशान्तिके युगमें और अशान्त देशमें योगसाधना सम्भव ही नहीं है। अतः ऐसे स्थानपर वैयक्तिक शान्तिकी स्थापना भी असम्भव है।

इन सब बातोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि तीनों शान्तियोंका सम्बन्ध राज्यव्यवस्थासे है। यदि राज्यव्यवस्था उत्तम एवं समर्थ होगी तो ही ये तीनों शान्तियाँ स्थापित हो सकेंगी; अन्यथा ये तीनों शान्तियाँ स्थापित न हो सकेंगी। हम लगभग पांच हजार वर्षोंसे 'शान्तिः शान्तिः शान्तिः' चिल्लाते आरहे हैं, किन्तु शान्ति स्थापित न होकर अशान्ति ही बढती जारही है। इसका कारण यह है कि राज्यशासनशक्ति जिनके आधीन है उनके मनमें यह बात नहीं है कि शान्तिस्थापित हो और जो शान्तिका जयघोष करते हैं उनके पास राज्यशासन शक्ति नहीं होती।

जिन ऋषियोंने प्रथम तीनबार शान्तिका उच्चारण किया, उन्हें यह विदित था कि राज्यशासनशक्तिसे ही इन तीन शान्तियोंकी स्थापना सम्भव है। उस समयके ऋषि राज्यशासन शक्तिका उपयोग कर सकते थे, इसी लिये उनके 'शान्ति' उच्चारण करनेका महत्त्व है। संसार में उन्हें स्थायी शान्ति स्थापित करनी थी और इस विषयमें उनके पास एक व्यवस्थित योजना भी थी। इसीलिये उन्होंने 'समुद्र पर्यन्तायाः पृथिव्याः एकराट्' समुद्रतक पृथ्वीका एक आर्यराजा होना चाहिये और उसका विधान भी एक ही होना चाहिये, ऐसा घोषित किया था। यह घोषणा पूजा आदि के अवसरोंपर आज भी ब्राह्मण करते हैं; किन्तु उनके हाथमें राज्य-सत्ता नहीं रहती। ऐसी स्थितिमें इस घोषणाका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इस प्रकारसे विचार करनेपर यह प्रतीत होता है कि प्रत्येक उपनिषद्के आरम्भ और अन्तमें किया जानेवाला यह त्रिवार शान्तिघोष राजकीय स्वरूपका है। इस घोषके साथ राज्यशक्ति होनेपर ही शान्तिस्थापना सम्भव है।

उपनिषदोंका शान्तिमन्त्र आध्यात्मिक ध्येयका एक अंश है और इसका सम्बन्ध इस प्रकार राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपकी राजनीतिसे है। बहुत बडी राजकीय योजना और बहुत बडी राज्यशासन शक्ति पीछे होनेपर ही त्रिवार शान्तिका कुछ मूल्य हो सकता है। अन्यथा केवल श्लोकके शब्दोंके उच्चारणसे क्या काम?

अध्यात्मका राष्ट्रीय जीवनसे क्या सम्बन्ध है। यह बात इस विवरणसे स्पष्ट हो जाती है। आजके अध्यात्मशास्त्रका अध्ययन करनेवाले यह समझते हैं कि आन्तरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय एवं प्रान्तीय राजनीतिसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही नहीं अपितु स्वयंके घरके प्रबन्धसे भी मुझे कोई सरोकार नहीं है। मैं अकेला रहूँगा, किसीसे सम्बन्ध न रखूंगा एवं आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करूँगा, आदि। किन्तु ये विचार अशुद्ध हैं, गलत हैं। ऐसा होना कभी भी सम्भव नहीं है।

अमृत प्राप्ति संघशः होती है

यजुर्वेद अ. ४० ईशोपनिषद्में स्पष्ट रूपसे कहा है कि 'संभूत्या अमृतं अश्नुते' सम्भूतिसे ही अमृतकी प्राप्ति होती है। 'सम्भूति' अर्थात् सं= एकरूप होकर, भूति= रहना। संघ बनाकर रहनेसे अमरत्व की प्राप्ति होती है। व्यक्ति तो मरेगा ही। व्यक्तिका अमर होना असम्भव है। संघ अमर है। हिन्दु व्यक्ति मरते रहते हैं; किन्तु हिन्दु समाज अमर है। सम्भूति द्वारा यह इस प्रकार अमरत्व प्राप्त हो सकता है।

प्रजया अग्ने अमृतत्वं अश्यां। ऋ०

प्रजा द्वारा अमरत्वकी प्राप्ति होती है। अखण्डित प्रजा-सातत्यसे अमरत्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार शिष्य परम्परासे अमरत्व प्राप्त हुआ करता है। संघमें रहनेसे, प्रजा-सातत्यसे, शिष्य परम्परासे अमरत्व प्राप्त होता है। यह बात अच्छी प्रकारसे सिद्धकी जा सकती है।

एक मनुष्यको दस पुत्र हुए। इस प्रकार प्रत्येक पीढीमें होता गया तो बीसवीं पीढीको धरतीपर रहनेके लिये उनके वंशजोंको स्थान ही न रहेगा। किन्तु यह केवल संख्याकी बात हुई। 'न अस्य कुले अब्रह्मवित् भवति' ऐसा माण्डूक्योपनिषद्में कहा गया है। जो ओंकारकी उपासना करता है उसके कुलमें ब्रह्मज्ञानहीनपुरुष उत्पन्न नहीं होते। सन्तति हो और वह ज्ञानसम्पन्न हो, यह कितनी बडी महत्वाकांक्षा है। 'हम ज्ञानविज्ञानसम्पन्न अविच्छिन्न सन्तति परम्परासे अमर होंगे'। यह महत्वाकांक्षा वैदिक

ऋषियोंकी थी और ऐसी महत्वाकांक्षा किसीके भी लिये भूषणावह ही होगी। दो चार पीढियों तक निरन्तर विद्वान उत्पन्न होते रहें तो उस कुलका कितना गौरव होता है। यहाँ तो इस प्रकारकी सन्तान परम्परासे आनन्त्यकी प्राप्ति करनी है। यदि किसी कुलमें बीस पीढियोंतक अविच्छिन्न ज्ञान परम्परा रहे तो उसकी कीर्ति कितनी होगी! शिष्य परम्परासे भी इस प्रकार आनन्त्य प्राप्त हो सकता है। वसिष्ठ-विश्वामित्रादि गोत्र पुत्र परम्परा और शिष्य परम्परा दोनोंसे आनन्त्य प्राप्त करनेवाले कुल थे।

व्यक्ति विश्वका सम्बन्ध तोडकर मुक्त होती है, इस प्रकारकी जो मुक्तिकी कल्पना सर्वत्र की जाती है वह इन प्राचीन ऋषियोंके मनमें भी नहीं आई थी। अपने संघकी वृद्धि करके, पुत्रपरम्परा एवं शिष्य परम्परा अविच्छिन्न रूपेण सुरक्षित रखकर आनन्त्य प्राप्त करना ही ऋषिजीवन का आदर्श था। मैंने यह ज्ञान ढूढकर निकाला है और इसे मैं इन तीनों परम्पराओं द्वारा स्थायी बनाऊंगा, ऐसे भाव यहाँ हैं। सारे विश्वका त्याग करके केवल मैं ही मुक्तिका-अमृतपान करता रहूँगा, ऐसे भाव यहाँ नहीं है। सम्भूति समुदाय, समाज, राष्ट्र, मानव समष्टि इस प्रकार यह सम्बन्ध उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता जाएगा। इसके द्वारा एक होकर हमें समुदायका हित साधन करना है। पृथक् पृथक् होनेका भाव यहाँपर नहीं है। यह संगठन बढकर समुद्रतक व्यापक समस्त पृथ्वीके मानवोंतक पहुँचाना है। यह विश्व एक कुटुम्ब या एक शरीर है, ऐसा अनुभव हमें प्राप्त करना है।

सबका कारणशरीर एक

स्थूल, सूक्ष्म और कारण इस प्रकार मनुष्यके तीन शरीर हुआ करते हैं। कोई कोई एक चौथा महाकारण शरीर भी मानते हैं। प्रत्येकका स्थूल एवं सूक्ष्मशरीर भिन्न भिन्न हुआ करता है। किन्तु कारणशरीर समस्त मानव जातिका एक ही होता है। वैयक्तिक भाव केवल स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरके विषयमें ही सीमित रहता है। कारणशरीरमें जाकर पृथक् पृथक् वैयक्तिक भाव रहता ही नहीं हैं। क्योंकि वह कारणशरीर 'सबका मिलकर' एक हैं। मुक्तिमें अवस्थित अमृत यहींपर संचित रहता है। इसी लिये इस प्रकारकी सम्भूतिद्वारा अमृतत्वकी प्राप्ति होती है। अविच्छिन्न ज्ञानकी परम्पराद्वारा अमरत्वकी प्राप्ति होती है, ऐसा कहा गया है।

जागृत अवस्थाके मनमें व्यक्तिभावका पार्थक्य है। एक बार जागृतिमेंका मन स्तब्ध हो जानेपर भूमा अवस्था प्राप्त होती है। यह कारणशरीरकी भूमा अवस्था सम्भूतिकी अवस्था है। यहाँ सर्वात्मभावका अनुभव होता है। यही अमृतत्व है। यही विश्वरूप है। यहीं पर सर्वात्मता अवस्थित है।

समस्त जनता ही एक पुरुष है

पृथ्वीपरकी समस्त जनताको मिलाकर एक शरीर बनता है। यहाँ मत, पंथ, वंश, देश आदिके भेद नहीं हैं। समस्त मानव जाति कारणशरीरसे एक ही है। वह एकता अविभक्त एवं अविच्छिन्न है, ऐसा मानकर ही मनुष्योंके समस्त व्यवहार होने चाहिये। इसीका नाम 'समुद्रतककी समस्त पृथ्वीपर एक राजा हो और समस्त मानव जातिका एकराज्य हो' यह है। इस अखिल मानव जातिको वेदने 'पुरुष' कहा है। समस्त मानवी जनता मिलकर 'एक पुरुष' है। इसी बातको प्रथम समझना चाहिये। यह बात जनताको आज समझ लेनी है। वह बात वेदोंने दी, ऋषियोंद्वारा उपदिष्ट हुई। समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका एक आर्यराज्य हो, इस प्रकारकी घोषणा पांच हजार वर्ष पूर्व भारतीय ऋषियोंने की और वह घोषणा वहीं तक रही। इन पांच हजार वर्षोंमें एक कदम भी आगे नहीं बढा गया। समस्त जनता एक पुरुष है। अर्थात् सब मनुष्योंका मिलकर एक देह है। इतनी अधिक एकात्मता सब मनुष्योंमें उत्पन्न होनी आवश्यक है। देखिये—

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्।
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥
(ऋ. १०।९०)

सहस्र बाहुः पुरुषः। (अथर्व० १९।६)

हजारों मस्तक, हजारों बाहु, हजारों नेत्र, हजारों उदर, हजारों जांघें और हजारों पैरोंवाला एक पुरुष इस पृथ्वीपर चारों ओर फैला हुआ है। ज्ञानी मनुष्य इसके मुख हैं, शूरवीर बाहू हैं, किसान और व्यापारी इसके उदर हैं तथा जांघे हैं, कारीगर इसके पैर हैं' इस प्रकारका यह

ज्ञानी, शूर, व्यापारी और शिल्पी मिलकर एक देह है। एक देहमें जिस प्रकार एकात्मता होनी चाहिये वैसी एकात्मता इस जनता रूपी पुरुषमें होनी चाहिये।

कौटुंबिक एकात्मता

कुटुंबमें अनेक मनुष्य भिन्न भिन्न होनेपर भी कुटुंब रूपसे उनमें जिस प्रकार एकात्मता रहती है (क्योंकि इस प्रकारकी एकात्मता होनेपर ही उस कुटुंबका यश एवं सामर्थ्य बढ सकता है) उसी प्रकार गांवमें, प्रान्तमें, राष्ट्रमें और पृथ्वीपर एकात्मता होवे तो ही समुद्रपर्यंत पृथ्वीपर एक आर्यराज्य होगा एवं सर्वत्र एक राज्य व्यवस्था हो सकेगी। 'वसुधैव कुटुंबकम्' की वृत्ति यही है। सम्पूर्ण पृथ्वीकी समस्त जनता एक कुटुंबके समान एकात्मतासे एकरूप होनी चाहिये।

राष्ट्रीय जीवनका पाया

अध्यात्मके आधारपर राष्ट्रीय जीवनका इस प्रकारका यह सुदृढ पाया है। इसी पर राष्ट्रीय जीवनकी रचना होनी है। यहाँ यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि विश्वात्मा, सूत्रात्मा या सर्वात्मा एक है, सबका कारणशरीर एक है। इस अध्यात्मके सिद्धान्तपर ही ये विचार आधारित हैं। व्यक्तिके पृथक्त्वको एवं पृथक् मुक्तिको यहाँ कोई विशेष स्थान नहीं है। व्यक्तिको अपनी पूर्ण उन्नति अवश्यमेव कर लेनी चाहिये। इसकी कारणशरीरमें जागृति होने तक पारमीमा है। इसका उदाहरण हम भगवान श्रीकृष्ण एवं अर्जुनके रूपमें दे सकते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयंको विश्वरूपमें अनुभव करते थे। उनका यह अनुभव उनके कारणशरीरपर जागृति होनेकी अवस्थामेंका था। श्रीकृष्णके लिये वैयक्तिक अथवा अन्य छोटेमोटे भेद प्रतिबन्ध स्वरूप नहीं हो पाते थे। इस कारण उनके सार्वजनिक हितके कार्य अव्याहत रूपसे जारी थे।

इनके साथ अर्जुन था। उसकी जागृति केवल उसके शरीरतक ही सीमित रहती थी। उसे इस बातका सुखदुःख अनुभव होता था कि 'मेरे सगे सम्बन्धि मर जायँगे अथवा जीवित रहेंगे।' भगवान् श्रीकृष्ण इस सुखदुःखसे मुक्त थे। क्योंकि उनकी जागृति कारणशरीरपर अर्थात् वैश्वानर स्थिति की थी। मनुष्यको इस स्थितितक पहुँचना है। इस लिये कहा है कि—

वैश्वानर स्थिति

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्।
१५।१४

'मैं वैश्वानर होकर प्राणियोंके देहमें रहा हूँ और प्राण तथा अपानसे युक्त होकर मैं चतुर्विध अन्न शरीरमें पचाया करता हूँ।' शरीरमें अन्न पचाना वैयक्तिक कार्य है तथा प्राणियोंके देहमें रहनेवाला, सदैव कारणशरीरपर जाग्रत रहनेवाला विश्वव्यापक आत्मा वैश्वानर है। इस वैश्वानर अवस्थाका अनुभव श्रीकृष्ण किया करते थे और उसी कालमें उनके सहवासमें रहनेवाला अर्जुन वैयक्तिक अवस्थामें जाग्रत था। ये दोनों कौरवोंके दुष्ट साम्राज्यको तोडकर उसके स्थानमें धर्मके साम्राज्यकी स्थापनाका राष्ट्रीय आन्दोलन एकमनसे कर रहे थे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कारण शरीरकी उच्च भूमिकापर पहुँचा हुआ पुरुष भी राजनीतिके दांवपेंच खेल सकता है। अर्जुन केवल स्थूल शरीरपर जाग्रत होनेके कारण बार बार मोहित हो जाता था और इसी कारण वह अपने कर्तव्यसे भी च्युत हो जाता था।

ज्ञानी, शूर, व्यापारी और शिल्पी ये सब मानवसमष्टिरूप एक पुरुषके मस्तक, बाहू, उदर और पैर हैं। इन एक एक अवयवोंके अन्तर्गत और भी बहुतसे उपविभाग हैं। किन्तु मुख्य मुद्दा तो यह है कि यह सम्पूर्ण मानव समष्टि एक देह है। एक देहके समान इसमें एकात्मता अपेक्षित है। इसमें अनन्यभाव चाहिये। आज इसमें वैर है।

अध्यात्मज्ञानद्वारा वैश्वानर, सूत्रात्मा, सर्वात्मा, विश्वात्मा इत्यादि नामोंकी यही सबके एकात्मताकी कल्पना प्रतिपादित की गई है। इस कल्पनाका प्रतिपादन वेद और उपनिषदों द्वारा होनेपर भी मानवजातिने अभीतक उसे स्वीकार नहीं किया है। अभीतक मानवजातिके वंशभेद, धर्मभेद, पंथभेद, देशभेद, प्रांतभेद आदिके चक्करमें ही पडी हुई है। अभीतक इस मानवसमाजमें 'वसुधैव कुटुंबकम्' की वृत्ति उत्पन्न होनी है। आर्यऋषियोंमें यह वृत्ति खूब

विकसित हुई हुई थी, किन्तु वह विकास आज उनके वंशजोंमें नहीं रह गया है। किन्तु भारतीय तत्त्वज्ञानके ग्रन्थोंमें वह है और वे ग्रन्थ आज हमारे पास हैं, यह सौभाग्यकी बात है।

मानव सृष्टिकी एकात्मता

मानव सृष्टिकी एकात्मता आर्योंकी आध्यात्मिक राष्ट्रीयताका आधार है। यह एकात्मता हमारे अन्दर एकरस हो जानेके पश्चात् केवल राष्ट्रीयताके नामपर वैर नहीं बढेंगे। यह वैश्वानरीय एकात्मता हममें न होनेके कारण और इस प्रकारकी अज्ञान-स्थितिमें भौतिक विज्ञान अत्यधिक बढ जानेके कारण युरोपियन राष्ट्र आपसमें व्यर्थ ही संघर्ष करते रहते हैं और इस प्रकार अपना गला अपने आप ही काट लेते हैं। किन्तु ऐसा करनेका कोई कारण नहीं है। जिस प्रकार एक कुटुम्बमें अनेक मनुष्य स्वतन्त्ररूपसे रहनेपर भी कुटुम्बभावनासे एकात्म हो सकते हैं, इसी प्रकार विश्वरूपी वैश्वानर पुरुष एक ही है, यह जानकर प्रत्येक राष्ट्र एक कुटुंबके अवयवके समान अपनेको मानेंगे और सेवा भावसे एक दूसरेकी उन्नतिके लिये पूरक होंगे। किन्तु इसके लिये विश्वात्मा एक है, समस्त पृथ्वीके मनुष्य मिलकर एक पुरुष है, यह अध्यात्मका ज्ञान उन्हें समझा देना आवश्यक है। यह बात यदि इन युरोपीय राष्ट्रोंकी समझमें आ जाय तो उनका जो भौतिक विज्ञान आज विनाशक यन्त्रोंको उत्पन्न करनेमें अपनी शक्ति व्यय कर रहा है वही सहायक एवं हितकारी यन्त्रोंका निर्माण करेगा, जिससे संसारको सुख मिल सकता है। इसीलिये अध्यात्मज्ञानपर संचालित राष्ट्रीय जीवनका प्रसार होना आज आवश्यक है।

राजाका आदर्श ईश्वर

ईश्वर विश्वका राजा है और राजा एक राष्ट्रका राजा है। राज्य छोटा हो या बडा हो उसकी व्यवस्था एवं अनुशासन सर्वत्र समान ही रहना आवश्यक है। ऋषियोंने जो ईश्वरकी स्तुति की है और उसमें जो उसका वर्णन किया है वह विश्वके श्रेष्ठ एवं निर्दोष राज्यशासकका वर्णन है। ईश्वर शुद्ध, पवित्र, निर्दोष, समर्थ, दक्ष एवं प्रमादरहित शासक है। इस प्रकारके जिन गुणोंका वर्णन किया गया है वे सब राष्ट्रके शासकके लिये आदर्श स्वरूप होवे इसीलिये किया गया है। ईश्वरके सब गुण इस प्रकारसे आदर्श राजाके गुण हो सकते हैं। इस एक सूत्रको यदि हमने ध्यानमें रखा तो अध्यात्मशास्त्रका सिद्धान्त राज्यव्यवस्थामें किस प्रकार उपयोगी होते हैं, यह सहज ही समझमें आ जायेगा। उदाहरणार्थ हम ईश्वरके एक दो गुणोंको लेंगे। ईश्वरके ज्ञानी, निर्दोष, दक्ष, समर्थ आदि जो गुण हैं वे राजामें भी होवे, यह बात किसे स्वीकार न होगी? हम यहाँ एक दो गुणोंका सोदाहरण विचार करेंगे।

अकर्ता ईश्वर एवं प्रकृति कर्त्री

ईश्वर अकर्ता है और जो कुछ करना होता है वह सब प्रकृति किया करती है। यह अध्यात्मका एक बडा सिद्धान्त है।

> कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ॥ २० ॥
> प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः।
> यः पश्यति तथात्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९॥
> (गीता १३)

'प्रकृति ही सब कर्म किया करती है और आत्मा अकर्ता है, इस प्रकार जो जानता है वही सचमुच सत्य जनता है।' प्रकृति समस्त सृष्टिके व्यवहार किया करती है और आत्मा अथवा ईश्वर उस प्रकृतिके खेल देखा करता है। स्वय कुछ नहीं करता। अध्यात्मका यह सिद्धान्त सबको विदित है। ईश्वर अथवा आत्माके स्थानपर हम 'राजा' को रखेंगे और प्रकृतिका अर्थ 'प्रजा' है, यह तो प्रसिद्ध ही है। यदि उसके प्रमाण अपेक्षित हों तो देखिये—

> प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः। शाकुन्तल ७।३५
> नृपतिः प्रकृतिरवेक्षितुं। रघु. ८।१८-१९
>
> स्वामी-अमात्य-सुहृत्-कोष-राष्ट्र-दुर्ग-बलानि च।
> राज्याङ्गानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपि च।
> (अमरकोष २।८।१७)

(प्रकृतिहित) राजा प्रजाका हित करे। प्रजाकी देखरेखके लिये राजा होता है। (१) अधिकारी, (२) मन्त्री, (३) मित्र, (४) कोश, (५) देश-राष्ट्र, (६) किले, (७) सेना ये राज्यके सात अङ्ग हैं और इसे प्रकृति कहते हैं। नागरिकोंके समुदायको भी प्रकृति कहा जाता है। (पौरश्रेणी)

नागरिकोंका यह भी एक आठवा अङ्ग है, ऐसा किन्हीं विद्वानोंका कथन है । ' प्रकृति ' का अर्थ प्रजाजनोंका संघ । प्रकृति सब कार्य करे, इसका अर्थ यह होता है कि प्रजाजनोंकी समितियाँ और उनके संघ राष्ट्रशासनके सब कार्य करें । राजा प्रकृतिके कार्यमें हस्तक्षेप न करे। प्रकृतिको-प्रजाको-अपनी उन्नतिके लिये जो कुछ करना आवश्यक हो वह सब करनेके लिये उसे पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये ।

प्रजा ज्ञानविज्ञानसे इतनी अधिक सम्पन्न होनी चाहिये कि जिससे वह अपना समस्त कार्यव्यवहार स्वयं कर सके और राजाको करनेके लिये कुछ शेष ही न रहे ! 'आत्मा अकर्ता एवं प्रजा सब कुछ करनेवाली' अध्यात्मके सिद्धान्तका क्या यह राजकीय रूपान्तर नहीं है ? इसमें अर्थ विषयकी कोई खींचातानी भी नहीं है अथवा कोई विशेष कल्पना भी नहीं करनी पडी है । ईश्वरके विश्वराज्यके सिद्धान्तोंको हमने पृथ्वीके राजाके लिये प्रयुक्त किया है । इसी प्रकार अन्य सिद्धान्त लगाकर देखना चाहिये । और देखिये-

विशि राजा प्रतिष्ठित । धर्मोऽस्मि । वा. य. २०।९
वशो मे अङ्गानि सर्वतः ॥ वा. य. २०।८

'प्रजाका आधार राजाको है । राजा कहे कि मैं धर्म हूँ, और मेरा समस्त शरीर प्राजाका बना हुआ है । ' इस प्रकार राजा माने । राजा और प्रजाकी एकात्मताका यहाँ उत्तम प्रकारसे वर्णन किया गया है । यहाँ राजा प्रजाका संघर्ष नहीं है अपितु उनका एकात्म्य है ।

राज्यशासकका शरीर प्रजाजनोंका शरीर है और प्रजा राज्यशासकका शरीर है । इतनी यहाँपर एकात्मता है।

हमने पहले दिखाया है कि समस्त जनता मिलकर एक पुरुष है एक शरीर है । इस शरीरमें एक राष्ट्र भी है और वह उस अखिल मानवसमरूपी शरीरका एक अवयव बनकर रहेगा। वहाँपर वैरभाव उत्पन्न न होनेके लिये ' समस्त मानवसमाज एक शरीर है ' यह कल्पना राष्ट्रशासनके मूलमें रखी है । यह एक शरीर है, अतएव समुद्र पर्यंत पृथ्वीका एक सार्वराजा हो और उसका राज्यशासन एक हो, ऐसा कहा गया है । एक शरीरमें एक ही शासन हो, यह बात विशेष स्पष्टीकरण करनेकी नहीं है । प्रत्येक राष्ट्रको ' मैं समस्त मानवसंघको एक भाग हूँ, एक अवयव अथवा एक अंग हूँ, ' ऐसा मानकर व्यवहार करना चाहिये । इससे विश्वसेवाके भाव प्रत्येकमें उत्पन्न होंगे और द्वेषभाव जडमूलसे नष्ट हो जावेंगे ।

अपने शरीरको ही लीजिये । प्रत्येक अवयव अन्य शरीरकी सेवा करनेके लिये ही है । प्रत्येक अवयवको चाहिये कि वह समर्थ बने और अन्य शरीरकी सेवा करे । तभी सम्पूर्ण शरीर सुखी हो सकता है । इसी प्रकार समस्त राष्ट्रोंको चाहिये कि वे मिलकर अपनेको अखिल मानव जातिरूपी शरीरके अवयव माने और अपने सामर्थ्य एवं वैशिष्ट्यकी वृद्धि करके, समस्त जनताकी सेवाद्वारा सुखका वातावरण निर्माण करें । इस प्रकार समस्त मानवजातिका कल्याण होगा, विद्वेष कम होकर पृथ्वीपर स्थायी शान्ति हो सकेगी ।

सर्वव्यापक ईश्वर

एक और सिद्धान्तका अब विचार करेंगे । ' ईश्वर सर्वव्यापक है ' यह बात अध्यात्म द्वारा निश्चित की गई है और यह सर्वविदित है ।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत् किं च ।

वा. य. ४०।१ ईश. १

' ईश्वर इस सबमें व्यापक है ' ऐसा इस मन्त्रका कहना है । जो ईश्वर समस्त विश्वमें है वह स्वयंके सामर्थ्यसे ही वहाँ व्याप्त है । किसी दूसरेकी दयासे वहाँ नहीं रहा है । उससे अधिक सामर्थ्यवान् कोई अन्य नहीं है जो कि उसे वहाँसे हटा सके ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । ऋ. १०।१२१।१०

' हे प्रजापते ! यहाँपर तुमसे अधिक सामर्थ्यवान् दूसरा और कोई नहीं है, जो तेरा पराभव कर सके ' इसलिये यह ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है । इसका तात्पर्य यह है कि जिसके शरीरमें शक्ति होती है वही वहाँपर इस राष्ट्रमें रह सकता है । यदि कोई दूसरा वहाँपर उससे बढचढ कर होगा तो वह उसे हटा देगा।

इस अर्थको अपने राष्ट्रमें घटाइये। आज हम स्वतन्त्र हैं । हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ है । यदि इसे स्थायी रखना हो तो तदर्थ हमें सामर्थ्यवान् बनना चाहिये, हमसे अधिक दूसरा कोई भी अधिक सामर्थ्यशाली न हो, ऐसा प्रयत्न करना चाहिये। हमारा सामर्थ्य अपने शत्रुकी अपेक्षा

अधिक प्रभावशाली होना चाहिये। शत्रुकी अपेक्षा यदि हम अधिक दक्ष, अधिक प्रभावी और अधिक समर्थ होंगे तो ही प्राप्त हुआ स्वराज्य टिक सकेगा। यदि हमारी लापर्वाहीसे शत्रुकी शक्ति अधिक प्रभावी हो गई तो हमारा टिकाव लगना भी कठिन हो जायेगा।

'ईश' वह है जो ईशन शक्तिसे युक्त हो। जिसमें इस प्रकारकी शासक शक्ति होगी वही राज्यका शासन चला सकेगा। जिसमें शासन करनेका सामर्थ्य न होगा उसे यदि राज्यपर अधिष्ठित कर दिया जाय तो उसका वहाँ स्थिर रहना सम्भव ही नहीं है।

ऊपर बताया गया है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। उसकी शक्ति सर्वत्र विद्यमान है। ऐसा स्थान कहीं भी नहीं है जहाँपर उसकी शक्ति न हो। राष्ट्रभरमें यह शासक-शक्ति सर्वत्र समानरूपेण प्रभावशाली होनी चाहिये। केवल केन्द्रमें प्रभावशाली हो और अन्यत्र न हो, ऐसा न होना चाहिये। ईश्वर सर्वत्र पहुँचा है और सर्वत्र प्रभावशाली है। इसीलिये उसे इधर उधर सरकाना सम्भव नहीं है। हमारे राज्यशासकका शासन यदि सभी स्थानोंपर उत्तम रूपेण प्रभावी होगा तो ही वह स्थिर रह सकता है। जहाँ संरक्षण कम होगा वहाँ शत्रु आक्रमण कर देगा और अपना आधिपत्य जमा लेगा।

ईश्वरके उपर्युक्त गुणोंका ही यदि केवलमात्र विचार किया जाय तो यह भलिभांति विदित हो जायेगा कि हमारा राज्य-शासन किस प्रकारका होना चाहिये। ईश्वरके गुणोंको ही हमें अपने राज्यशासनमें अन्तर्हित कर लेने चाहिये। उनका समावेश हम अपनेमें करें, इसीलिये ऋषिमुनियोंने ईश्वरके गुणोंका वर्णन किया है। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्यशासनके विषयमें पूरा विवरण बताया जा सकता है।

ईश्वरके एक दो गुणोंका वर्णन हम उदाहरणार्थ और कर लेते हैं और यह दिखानेका यत्न करते हैं कि वे गुण राज्यशासनमें किस प्रकार समाविष्ट हो सकते हैं—

तत् दूरे तद् उ अन्तिके। तत् अन्तर् अस्य सर्वस्य। तत् उ सर्वस्यास्य बाह्यतः। तत् धावतः अन्यान् अत्येति। वा. य. ४० ईश.

'वह दूर है और समीप भी है, वह सबके अन्दर है और बाहर है, वह दूसरे दौडनेवालोंके आगे जाता है' यह ब्रह्मका वर्णन है। ब्रह्म, आत्मा और ईश ये नाम उस मूक महाशक्तिके ही वाचक हैं। यही विश्वका शासक है और उसीका इस विश्वमें शासन चल रहा है। वह शासन जिस प्रकार समीप उसी प्रकार दूर, जिस प्रकार केन्द्रमें उसी प्रकार सीमाप्रान्तमें है। वह जैसा अन्दर वैसा ही बाहर है और जो शत्रु दौडते हैं उनसे भी आगे वह वेगसे दौडता है। यह अन्तिम गुण अत्यन्त महत्वका है। मान लीजिये कि चोर चोरी करके यदि भागने लगे तो राष्ट्र रक्षकोंका वेग उसे पकडनेके लिये उससे भी अधिक होना चाहिये, तभी वे उस चोरको पकड सकेंगे। शासकोंकी शक्ति अन्य लोगोंकी अपेक्षा अधिक होनी चाहिये तभी वे शासन कर सकेंगे। यदि गुण्डोंकी शक्ति बढ गई तो वहाँ गुण्डोंका राज्य हो जावेगा।

'ईशावास्यमिदं सर्वं' शक्तिमानोंका शासन यहाँ-पर रहा करता है, यह नियम है। ईशमें बहुत बडी शक्ति हुआ करती है, इसलिये वह विश्वपर शासन करता है। उससे अधिक और किसीकी भी शक्ति नहीं है; अतएव सबपर ईशका ही शासन चलता है।

नगर कैसे हों ?

अबतक हमने यह देखा कि शासकोंकी शक्ति महान होनेपर राज्य स्थायी होता है। अब राष्ट्रके नगर कैसे हों, यह देखिये। नगरोंकी सुरक्षितता विषयक इस मन्त्रपर विचार कीजिये—

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

'देवनगरी अयोध्या है। इस नगरीके बाहर जो किलेकी दीवाल है उसमें नौ दरवाजे और आठ चक्र लगे हुए हैं।' इस कारण यह नगरी 'अ-योध्या' अर्थात् शत्रुद्वारा आक्रमित हो जानेपर भी हाथमें आना सम्भव नहीं है। इस प्रकारकी यह दुर्ग नगरी है। यह वास्तवमें अध्यात्मका वर्णन है। यह एक प्रकारसे शरीरका ही वर्णन है। पृष्ठ-वंशमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान आदि चक्र हैं और नौ इन्द्रियोंके द्वार ही नौ द्वार हैं। यह शरीरका वर्णन है। यहाँ इसका अधिष्ठाता आत्मा निवास करता है, यही वेदके कविको यहाँ अभिप्रेत है। इस सम्पूर्ण कथनमें मानो नगरके चारों ओर स्थित सुसज्ज किले जैसा वर्णन है। कविकी दृष्टिके सामने

ऋषिकालके सुराज्य नगर थे, यह बात इससे स्पष्ट होती है। जब अध्यात्मशास्त्रमें कोई दृष्टान्त आता है तो वह स्थिति सार्वत्रिकरूपेण विद्यमान रहती है, ऐसा समझनेमें कोई आपत्ति नहीं है।

पुरी और नगरी

यहाँ 'देवानां पूः' अर्थात् 'देवोंकी नगरी' ऐसा कहा गया है। समस्त सुखसाधन एवं समस्त संरक्षक साधनोंसे जो परिपूर्ण होती है वह 'पुरी' कहलाती है। जहाँ केवल नागरिक रहते हों उसे नगरी कहा जाता है, जहाँ पवित्र स्थान होते हैं तीर्थक्षेत्र कहा जाता है। जहाँ लोग संघशः रहते हैं उसे ग्राम कहते हैं। इस प्रकारसे भिन्न भिन्न गांवोंके भिन्न भिन्न नाम हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वैदिककालमें ग्राम-नगर-पत्तन-पुरी-क्षेत्र आदिकी कल्पना बिल्कुल निश्चित हो गई थी।

ग्रामाधिकारी

ग्रामकी स्थापना होते ही ग्रामाधिकारी नियुक्त किया जाता है। इस सम्बन्धसे भी अध्यात्मका प्रतिपादन करते समय प्राण अन्य प्राणों एवं उपप्राणोंको शरीरमें भिन्न भिन्न स्थानोंपर निवास करनेके लिये कहता है तथा प्रत्येक ग्रामपर एक एक अधिकारीकी नियुक्ति करता है। वर्णन इस प्रकार है—

यथा सम्राट् एव अधिकृतान् विनियुङ्क्ते।
एतान् ग्रामान् एतान् ग्रामान् अधितिष्ठस्व
इति एवमेव एष प्राणः इतरान् प्राणान्
पृथक्पृथगेव संनिधत्ते ॥ प्रश्न ३।४

जिस प्रकार सम्राट् अपने साम्राज्यमें 'तू इतने गावोंकी देखरेख कर!' 'तुझे इस जिलेपर नियुक्त किया है' ऐसा कहकर विभिन्न नियुक्तियाँ करता है, इसी प्रकार मुख्य प्राण अन्य प्राणोंको इस शरीरके भिन्न भिन्न भागोंमें नियुक्त करता है और उनके द्वारा वे वे काम करा लिया करता है। यहाँ प्राणोंके कार्योंका वर्णन करनेके लिये प्रान्ताधिकारियोंकी उपमा दी गई है। कविकी दृष्टिके सामने जिलाधिकारी एवं प्रान्ताधिकारी नियुक्तिका विषय है। प्राणोंकी व्यवस्थाका निदर्शन करनेके लिये वह प्रान्ताधिकारियोंकी उपमा दे रहा है। प्रान्ताधिकारी किस प्रकारके हों, यह बात प्राणोंकी कार्यक्षमतासे समझी जा सकती है।

प्राण और इन्द्रियाँ

इन्द्रियाँ तो विषयभोगकी प्राप्ति होनेपर ही कार्य करती हैं। विषय भोगोंकी लालसासे कार्य करना गौण है। प्राणका कार्य मुख्य है; क्योंकि वह बिना कोई उपभोग लिये जन्मसे लेकर मृत्युतक निरन्तर कार्य किया करता है। प्राणके उदाहरणसे यह सिद्ध होता है कि वही कार्य मुख्य है जो बिना किसी लालसाके बराबर होता रहे। अधिकारी प्रलोभनमें फंसनेवाले न होने चाहिये। सुख हो या न हो, अपना कार्य उत्तम रीतिसे करनेवाले अधिकारी हों। प्राण एवं अधिकारियोंके साधर्म्यसे यह बोध हमें प्राप्त होता है।

चुनाव

समस्त प्रजाजनोंका संघ एक प्रकारसे शासक है, यह पूर्व दिखाया जा चुका है। समस्त प्रजा एक साथ कोई राज्यशासन नहीं चला सकती। यह कार्य तो उसके प्रतिनिधियों द्वारा ही सम्भव हुआ करता है। इन प्रतिनिधियोंका चुनाव किस प्रकारका हो? इसका विचार यहाँ करना चाहिये। वह वेदमन्त्रोंमें इस प्रकार वर्णित है—

विराट् वा इदमग्र आसीत्। सा उदक्रामत्
सा समितौ न्यक्रामत्। सा उदक्रामत् सा
आमन्त्रणे न्यक्रामत्। अथर्व० ८।१०

'विराट्' प्रारम्भिक अवस्था थी। वि-राट् अर्थात् राजाके न होनेकी स्थिति। जब राजाकी कल्पनाही न थी उस समयकी यह अवस्था है तब केवल प्रजामात्र थी और उसका शासक कोई भी नहीं था। यह प्रजाशक्ति उन्नत एवं केन्द्रित हुई और उसमेंसे ग्रामसभा उत्पन्न हुई। ग्रामसभाद्वारा वह प्रजाकी शक्ति कार्य करने लगी। इसके बाद इस शक्तिकी और भी उत्क्रान्ति हुई और वह राजसमितिके रूपमें परिणत हुई।

अर्थात् ग्रामस्थ मंडलके प्रतिनिधि ग्रामसभामें आये और उनके द्वारा ग्राम-शासन होने लगा। ग्रामसभाओंके प्रतिनिधियोंकी राष्ट्रसमिति बनी और उसके द्वारा राष्ट्रका शासन चलने लगा। इसके पश्चात् इस राष्ट्र समितिके प्रतिनिधियोंका एक मन्त्रीमण्डल बना। इसीको उपर्युक्त मन्त्रमें 'आमन्त्रण' कहा गया है। यह मन्त्रीमण्डल राष्ट्रका

शासन करने लगा। इस आमन्त्रणमण्डलका अध्यक्ष 'प्रजापति' हुआ। इस प्रकार 'प्रजापति संस्था' द्वारा राष्ट्रका शासन चलने लगा।

प्रजापति राष्ट्रका अध्यक्ष बना और उसकी आज्ञासे चलनेवाली ग्रामसभा एवं राष्ट्रसमिति ये दो शासक संस्थायें बनीं। ये प्रजापतिकी आज्ञासे उत्पन्न होनेके कारण उन्हें प्रजापतिकी पुत्रियाँ कहा जाता था। तथापि इन दोनों सभाओंके सदस्य प्रजापतिके रक्षक माने जाते थे, ऐसा भी वर्णन किया गया है—

सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ
संविदाने। येना संगच्छा उप मा स शिक्षात्
चारु वदानि पितरः संगतेषु। अथर्व०

'सभा और समिति प्रजापतिकी दो पुत्रियाँ हैं; किन्तु वे प्रजापतिको सिखानेवाली एवं उसकी रक्षा करनेवाली हैं।' राज्यशासन सम्बन्धि सत्यज्ञान इन सभाओंके द्वारा राजाको प्राप्त होता है। यही कारण है कि वे प्रजापतिको सिखाती हैं तथा उसकी रक्षा करती हैं। क्योंकि जो राजा प्रजाका उत्तम प्रकारसे पालन करता है वह प्रजापतिके रूपमें सम्मानित होता है। किन्तु जो शासक उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन न करेगा वह प्रजापति पदसे हटा दिया जावेगा। यह बात वेदमन्त्र ही कहता है। देखिये—

वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन्। ऋ. १०।६१।७

ठीक प्रकारसे राज्यशासन न करनेवाले पहले प्रजापतिको निकाल दिया तथा दूसरे प्रजापतिको लोक प्रतिनिधियोंने चुन लिया।

इस व्याख्यानमें अध्यात्मशास्त्रके सिद्धान्त राज्य-शासनके लिये किस प्रकारसे उपयोगी होते हैं, यह बताया गया है। अध्यात्मशास्त्रका वर्णन करते समय ही ऋषियोंने राज्यशासनका वर्णन किया है। राज्यशासन बहुत बड़ा एवं बहुत व्यापक विषय है। उसमें आर्थिक, सामाजिक, शत्रुनिर्दालन, मित्रसंरक्षण आदि अनेक विषय हैं। इन सबका वर्णन इस छोटेसे लेखमें होना सम्भव नहीं है। इन सम्पूर्ण विषयोंपर लिखा जा सकता है। किन्तु इस लेखमें मुख्य बात यह बताई गई है कि समस्त मानव जाति मिलकर एक शरीर है। यह एकात्मता ही अध्यात्ममूलक राज्यशासनका आत्मा है। कृपया इस ओर पाठक विशेष ध्यान दें।

प्रश्न

(१) अध्यात्मज्ञानसे वैयक्तिक दिव्यजीवन

१ विचार, उच्चार और आचारमें सामंजस्य किस तरह होता है ?

२ उत्तम पुरुष व्याकरणमें किसे कहते हैं ? उत्तम पुरुष कौन है ? उत्तम पुरुष और पुरुषोत्तममें क्या भेद है ?

३ उत्तम पुरुष, मध्यम पुरुष और तृतीय पुरुष क्या बोध देते हैं ? स्वयंभू अस्तित्व किसका है ?

४ 'अहं ब्रह्मास्मि' का भाव क्या है ? इस भावका वेदमंत्र कौनसा है ? दोनोंके आशयोंकी तुलना करो।

५ इन्द्रकी सभा कहां है और इस सभाके सदस्य कौन हैं ? इन्द्रियोंका अर्थ क्या है ?

६ शक्तिकी वृद्धिका अनुष्ठान किस तरह होता है ?

७ सप्तऋषियोंके आश्रमका स्थान बताओ और वर्णन करो क्या शरीरको पूयविण्मूत्रका गोला कहनेके लिये वेदमें कोई प्रमाण है ?

८ दशरथ और दशमुख क्या भाव बताते हैं ?

९ पहारा करनेवाले देव कौन हैं ? और वे कहां पहारा करते हैं ? देवतामंदिर कहां है ?

१० द्वारका और अयोध्या कहां है, उसका स्थान कहां है ? इन नगरियोंका वर्णन करो.

११ कुरुक्षेत्र कहां है और वहां क्या होता है ?

१२ वैदिक निवृत्ति मार्ग कैसा है, उसका वर्णन करो। सची निवृत्ती और भ्रामक निवृत्तिका स्वरूप बताओ।

१३ ब्रह्मज्ञानका परिणाम सुप्रजा है, इसके प्रमाण दो। इस विषयमें आज क्या मानते हैं ?

(२) अध्यात्मज्ञानसे राष्ट्रीय उन्नति

१४ गीताने अर्जुन पर कौनसा परिणाम किया ?

१५ श्री रामचन्द्र पर वसिष्ठके उपदेशका परिणाम क्या हुआ ?

१६ तीन शान्तियोंकी स्थापना कौन कर सकता है ?

१७ जागतिक शान्ति, राष्ट्रीय शान्ति और वैयक्तिक शान्ति किस तरह स्थापन होगी और कौन इनकी स्थापना करेंगे ?

१८ संघशः अमरत्व होता है या व्यक्तिशः होता है ?

१९ मनुष्यके शरीर कितने हैं और वे कैसे हैं ?

२० समस्त जनता मिलकर एक विराट् पुरुष है यह कैसा है वह प्रमाणसे सिद्ध करो।

२१ एकात्मता, कौटुंबिक और राष्ट्रीय कैसी होती है ?

२२ वैश्वानर अग्निका स्वरूप बताओ।

२३ राजाका आदर्श कौन है ?

२४ अकर्ता ईश्वर और कर्त्री प्रकृतिका राजकीय भाव क्या है ?

२५ ईश्वरके ऐश्वर्यका वर्णन करो।

२६ नगर कैसे हों ? प्रमाणोंके साथ समझाओ।

२७ पुरी, नगरी ग्राम और क्षेत्रका स्वरूप बताओ ।

२८ शासनके लिये प्रतिनिधि कैसे चुने जांय ?

२९ सभा, समिति और आमंत्रणके स्वरूप बताओ।

६४ उदीरतां सूनृता उत्पुरंधीरुदग्नयः शुशुचानासो अस्थुः ।
स्पार्हा वसूनि तमसापगूळ्हाविष्कृण्वन्त्युषसो विभातीः ॥ ६ ॥
६५ अपान्यदेत्यभ्य१न्यदेति विषुरूपे अहनी संचरेते ।
परिक्षितोस्तमो अन्या गुहाकरद्यौदुषाः शोशुचता रथेन ॥ ७ ॥
६६ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचन्ते वरुणस्य धाम ।
अनवद्यास्त्रिंशतं योजनान्येकैका क्रतुं परि यन्ति सद्यः ॥ ८ ॥
६७ जानत्यह्नः प्रथमस्य नाम शुक्रा कृष्णादजनिष्ट श्वितीची ।
ऋतस्य योषा न मिनाति धामाहरहर्निष्कृतमाचरन्ती ॥ ९ ॥
६८ कन्येव तन्वा३ शाशदानाँ एषि देवि देवमियक्षमाणम् ।
संस्मयमाना युवतिः पुरस्तादाविर्वक्षांसि कृणुषे विभाती ॥ १० ॥
६९ सुसंकाशा मातृमृष्टेव योषाविस्तन्वं कृणुषे दृशे कम् ।
भद्रा त्वमुषो वितरं व्युच्छ न तत्ते अन्या उषसो नशन्त ॥ ११ ॥

---

६४ (सूनृता उदीरतां) स्तोत्र कहे जांय, (पुरंधीः उत्) विशाल बुद्धियां कार्यमें लगें, (अग्नयः शुशुचानासः) अग्नि प्रदीप्त होकर (उत् अस्थुः) जलते जांय। (विभातीः उषसः) प्रकाशती उषाएं (तमसा अप गूळ्हा) अन्धकारसे ढंके (स्पार्हा वसूनि) स्पृहणीय धन (आविष्कृण्वन्ति) प्रकट करती रहें ॥ (६)

६५ (विषुरूपे अहनी संचरेते) विरुद्ध रूपवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार कर रही हैं। (अन्यद् अप एति) रात्रीका अन्धकार चला जाता है और (अन्यत् अभि एति) दिनका प्रकाश आ जाता है। (परिक्षितोः अन्या) इन घूमनेवालोंमेंसे एक रात्री (तमः गुहा अकः) अन्धकारसे सबको आच्छादित करती है, और दूसरी उषा (शोशुचता रथेन अद्यौत्) तेजस्वी रथसे प्रकाशती है ॥ (७)

६६ (अद्य सदृशीः) आज भी ये समान हैं और (श्वः उ सदृशीः इत्) कल भी ये उषाएं समान ही होंगी। (वरुणस्य दीर्घं धाम) वरुणके विस्तीर्ण स्थानकी (अनवद्याः सचन्ते) ये शुद्ध उषायें सदा सेवा करती हैं। (एका एका) एक एक उषा (त्रिंशतं योजनानि) तीस योजन (सद्यः क्रतुं परियन्ति) तत्काल ही कर्म प्रवर्तक सूर्यके आगे चलती हैं ॥ (८)

६७ (अह्नः प्रथमस्य नाम जानती) दिनके प्रथम भागका यश जाननेवाली (शुक्रा श्वितीची) शुद्ध और तेजस्विनी उषा (कृष्णात् अजनिष्ट) रात्रीके काले अन्धकारमेंसे प्रकट होती है। यह (योषा) स्त्री उषा (ऋतस्य धाम न मिनाति) सत्यके व्रतको तोडती नहीं और (अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती) प्रतिदिन नियत स्थानपर आती और नियमपूर्वक रहती है ॥ (९)

६८ हे (देवि) उषा देवि ! (तन्वा शाशदाना कन्या इव) शरीरको स्पष्ट दिखानेवाली कन्याके समान (इयक्षमाणं देवं एषि) इष्ट सुख देनेवाले पति देवके पास तू जाती है। (युवति संस्मयमाना) तरुणी स्त्री हसती हुई और (पुरस्तात्) पतिके सन्मुख (विभाती) चमकती हुई (वक्षांसि आविः कृणुषे) अपनी छाती प्रकट रूपसे दिखाती है ॥ (१०)

६९ (मातृमृष्टा योषा इव) माताद्वारा पवित्र बनी तरुणी स्त्रीके समान (सुसंकाशा) तेजस्विनी तू (कं तन्वं दृशे आविः कृणुषे) अपने सुन्दर शरीरको लोगोंको दिखानेके लिये प्रकट करती है। हे (उषः) उषा ! (त्वं भद्रा वितरं व्युच्छ) तू कल्याण करनेवाली होकर दूरतक प्रकाशती रह। (ते तत् अन्याः उषसः न नशन्त) तेरा वह तेज अन्य उषाएं प्राप्त नहीं कर सकेंगी ॥ (११)

७० अश्वावतीर्गोमतीर्विश्ववारा यतमाना रश्मिभिः सूर्यस्य ।
परा च यन्ति पुनरा च यन्ति भद्रा नाम वहमाना उषासः ॥ १२ ॥

७१ ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रंभद्रं क्रतुमस्मासु धेहि ।
उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छास्मासु रायो मघवत्सु च स्युः ॥ १३ ॥

(ऋ० १।१२४।१-१३)

(कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । उषाः । त्रिष्टुप् ।)

७२ उषा उच्छन्ती समिधाने अग्ना उद्यन्त्सूर्य उर्विया ज्योतिरश्रेत् ।
देवो नो अत्र सविता न्वर्थं प्रासावीद्द्विपत्प्र चतुष्पदित्यै ॥ १ ॥

७३ अमिनती दैव्यानि व्रतानि प्रमिनती मनुष्या युगानि ।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनामायतीनां प्रथमोषा व्यद्यौत् ॥ २ ॥

७४ एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥ ३ ॥

---

७० (अश्वावतीः गोमतीः) घोडोंसे और गौओंसे युक्त (विश्ववाराः) सबको स्वीकारने योग्य (सूर्यस्य रश्मिभि. यतमानाः) सूर्यके किरणोंसे अन्धकार दूर करनेके लिये यत्न करनेवाली (भद्रा नाम वहमाना उषासः) कल्याण करनेका यश धारण करनेवाली उषाएं (परा च यन्ति) दूर जाती हैं और (पुनः आयन्ति च) फिर आती हैं ॥ (१२)

७१ हे (उषः) उषा ! (ऋतस्य रश्मिं अनुयच्छमाना) सूर्यके किरणोंके अनुकूल रहनेवाली तू (अस्मासु भद्रं भद्रं क्रतु धेहि) हमारे अन्दर कल्याणकारक कर्म करनेकी बुद्धि स्थापन कर । तू (सुहवा नः अच्छ व्युच्छ) बुलानेपर हमारे सामने प्रकाशती रह । (अस्मासु मघवत्सु च राय. स्युः) हमारे और धनिकोंमें पर्याप्त धन रखो ॥ (१३)

७२ (समिधाने अग्नौ) प्रज्वलित अग्नि होनेपर (उषा उच्छन्ती) उषा अन्धकार दूर करती है और (उद्यन् सूर्यः) उदित हुए सूर्यके समान (उर्विया ज्योति. अश्रेत्) विशाल तेज धारण करती है । (अत्र सविता देवः नः अर्थं) यहां सूर्य देव हमारे लिये आवश्यक धन तथा (द्विपत् चतुष्पद्) द्विपाद और चतुष्पादोंको (इत्यै प्र प्र असावीत्) गमन करनेके लिये मार्ग कर देवे ॥ (१)

७३ (दैव्यानि व्रतानि अमिनती) दिव्य व्रतोंका नाश न करनेवाली, परंतु (मनुष्या युगानि प्रमिनती) मनुष्योंके आयुका नाश करनेवाली (ईयुषीणां शश्वतीनां उपमा) सदा आती रही उषाओंके अन्तमें आनेवाली तथा (आयतीनां प्रथमा) आनेवाली उषाओंमें पहिली यह (उषा व्यद्यौत्) प्रकाशती है ॥ (२)

७४ (एषा दिवो दुहिता) यह द्युलोककी पुत्री (ज्योतिः वसाना समना) ज्योतिरूप वस्त्र पहननेवाली उत्तम मनवाली (पुरस्तात् प्रति अदर्शि) पूर्व दिशामें दीखने लगी है । यह उषा (ऋतस्य पन्थां साधु) सत्यके मार्गसे ठीक तरह जैसी (प्रजानती इव अनु एति) विदुषी स्त्री जाती है वैसी जाती है । तथा (दिशः न मिनाति) दिशाओंमें यह किसी तरह बाधा नहीं डालती ॥ (३)

७५ उपो अदर्शि शुन्ध्युवो न वक्षो नोधा इवाविरकृत प्रियाणि ।
अद्मसन्न ससतो बोधयन्ती शश्वत्तमागात्पुनरेयुषीणाम् ॥ ४ ॥
७६ पूर्वे अर्धे रजसो अप्त्यस्य गवां जनित्र्यकृत प्र केतुम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीय ओभा पृणन्ती पित्रोरुपस्था ॥ ५ ॥
७७ एवेदेषा पुरुतमा दृशेकं नाजामिं न परि वृणक्ति जामिम् ।
अरेपसा तन्वा३ शाशदाना नार्भादीषते न महो विभाती ॥ ६ ॥
७८ अभ्रातेव पुंस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनानाम् ।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव नि रिणीते अप्सः ॥ ७ ॥
७९ स्वसा स्वस्रे ज्यायस्यै योनिमारैगपैत्यस्याः प्रतिचक्ष्येव ।
व्युच्छन्ती रश्मिभिः सूर्यस्याञ्ज्यङ्क्ते समनगा इव व्राः ॥ ८ ॥
८० आसां पूर्वासामहसु स्वसॄणामपरा पूर्वामभ्येति पश्चात् ।
ताः प्रत्नवन्नव्यसीर्नूनमस्मे रेवदुच्छन्तु सुदिना उषासः ॥ ९ ॥

---

७५ (शुन्ध्युव. वक्षः न) शुद्धस्वच्छ छातीके समान (उपो अदर्शि) समीपसे ही उषा दीखती है । उस उषाने (नो-धा इव प्रियाणि आविः अकृत) नवीन वस्तुका धारण करनेवालेके समान अपने प्रिय हेतु प्रकट किये है । (अद्मसत् न ससतः बोधयन्ती) घरमें रहनेवाली स्त्री जैसी सोनेवालोंको जगाती है, वैसी वह उषा (आईयुषीणां शश्वत्तमा आनेवालोंमें निश्चयसे प्रथम आनेवाली (पुन आ अगात्) पुनः आगयी है ॥ (४)

७६ (अप्त्यस्य रजसः पूर्वे अर्धे) व्यापक अन्तरिक्ष लोकके पूर्व अर्धमें (गवां जनित्री केतुं प्र अकृत) किरणोंको प्रकट करनेवाली उषाने प्रकाश किया है। (पित्रो. उपस्था) द्यावा पृथिवीके समीप रहकर (उभा आपृणन्ती) इन दोनों लोकोंको प्रकाशसे भरपूर भरनेवाली उषा (वितरं वरीयः विप्रथतेउ) विशेष श्रेष्ठ प्रकाशसे आकाशको भर देती है॥ (५

७७ (एषा एव इत्) यह उषा (पुरुतमा) विस्तीर्ण होती हुई (कं दृशे) सुखके अनुभूतिके लिये जिस तरह (अजामिं न परि वृणक्ति) विजातीयको त्यागती नहीं वैसी ही (न जामि) स्वजातीयको भी नहीं छोडती। दोनोंको प्रकाशित करती है। (अरेपसा तन्वा शाशदाना) निष्पाप शरीरसे प्रकाशित होती हुई यह उषा (न अर्भात् ईषते न छोटेसे दूर भागती है और (न महः) न बडेको त्यागती है, पर दोनोंको (विभाती) प्रकाशित करती है ॥ (६)

७८ (अभ्राता इव प्रतीची पुंसः एति) भ्रातृविहीन स्त्री जैसी पीछे हटकर अपने पितादिके पास जाती है, (धनानां सनये गर्तारुक् इव) धनोंकी प्राप्तिके लिये कोई स्त्री जैसे न्यायालयमें जाती है, (उशती सुवासा जाया पत्ये इव) पतिकी इच्छा करनेवाली उत्तम वस्त्र धारण करनेवाली स्त्री जैसी पतिके पास जाती है, यह (उषा) उषा (हस्रा इव अप्सः नि रिणीते) हंसती हुई स्त्रीके समान अपनी सुंदरताको प्रकट करती है ॥ (७)

७९ (स्वसा) एक बहन (ज्यायस्यै स्वस्रे) अपनी श्रेष्ठ बहनके लिये (योनिं आरैक्) स्थान खुला करती है (अस्याः प्रतिचक्ष्य इव अप एति) इसके देखते ही वह स्वयं हट जाती है। (सूर्यस्य रश्मिभिः व्युच्छन्ती) सूर्यके किरणोंसे अन्धेरेको दूर करती हुई यह उषा (समनगा इव व्राः आञ्जि अक्ते) मिलकर जानेवाले विद्युत समूहके समान रूपसे प्रकाशती है ॥ (८)

८० (आसां पूर्वासां स्वसॄणां) इन पूर्व समयके बहिनोंमें (अहसु अपरा) दिनोंके मध्यमें एक। पश्चात् पूर्वा अभि एति) पीछेसे आकर दूसरीके पीछेसे जाती है। (ताः उषास प्रत्नवत् नव्यसीः) वे उषाएं पुरातनके समान नवीन भी (नूनं अस्मे रेवत् सुदिना उच्छन्तु) निश्चय पूर्वक हमारे लिये धन युक्त शुभ दिन प्रकाशित करती रहें ॥ (९)

*

८१ प्र बोधयोषः पृणतो मघोन्यबुध्यमानाः पणयः ससन्तु ।
रेवदुच्छ मघवद्भ्यो मघोनि रेवत्स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥ १० ॥

८२ अवेयमश्वैद्युवतिः पुरस्ताद्युङ्क्ते गवामरुणानामनीकम् ।
वि नूनमुच्छादसति प्र केतुर्गृहंगृहमुप तिष्ठाते अग्निः ॥ ११ ॥

८३ उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥ १२ ॥

८४ अस्तोढ्वं स्तोम्या ब्रह्मणा मेऽवीवृधध्वमुशतीरुषासः ।
युष्माकं देवीरवसा सनेम सहस्रिणं च शतिनं च वाजम् ॥ १३ ॥

---

८१ हे (मघोनि उषः) धनवती उषा! तू (पृणत प्रबोधय) दाताओंको जगाओ। (अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु) अज्ञानी दान न देनेवाले कंजूस बनिये सो जांय। हे (मघोनि) धनवाली उषा! (मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ) धनवानोंके लिये धनके साथ प्रकाश दे। हे (सूनृते) उत्तम रीतिसे बोलनेवाली उषा! (जारयन्ती) सब प्राणियोंकी आयु कम करती हुई तू (स्तोत्रे रेवत् उच्छ) स्तोताके लिये धनके साथ प्रकाशित हो ॥ (१०)

८२ (इय युवतिः पुरस्तात् अव अश्वैत्) यह तरुण स्त्री उषा पूर्व दिशामें बढ रही है। यह (अरुणानां गवां अनीकं युंक्ते) लाल रंगके घोडोंके समूहको अपने रथमें जोतती है। यह उषा (नूनं वि उच्छात्) निश्चयसे प्रकाशती है और (असति प्र केतुः) अन्धेरेमें प्रकाश करती है। (अग्निः गृहं गृहं उपतिष्ठाते) अग्नि घर घरमें प्रदीप्त होता है ॥ (११)

८३ (ते व्युष्टौ) तेरा प्रकाश होनेपर (वयः चित् वसतेः उत् अपप्तन्) पक्षिगण ऊपर उडते हैं। (ये नरः च पितुभाजः) जो मनुष्य हैं वे अन्नकी इच्छासे भ्रमण करते हैं। हे (देवि उषः) उषा देवी! (अमा सते) घरमें रहनेवाले (दाशुषे मर्त्याय) दाता मनुष्यके लिये (भूरि वाम वहसि) तू बहुत धन देती है ॥ (१२)

८४ हे (स्तोम्याः) प्रशंसनीय उषाओ! (मे ब्रह्मणा अस्तोढ्वं) मेरे स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है। हे (उषास) उषाओ! (उशतीः अवीवृधध्वं) उन्नतिकी इच्छा करनेवाली हम सब प्रजाजनोंकी वृद्धि करे। हे (देवीः) दिव्य उषाओ! (युष्माकं अवसा) तुम्हारे सरक्षणसे (सहस्रिण च शतिनं च वाजं सनेम) सहस्रों और सेकडों प्रकारके धन अन्न और बलको हम प्राप्त करेंगे ॥ (१३)

दीर्घतमाके पुत्र कक्षीवान्का

उषाका वर्णन

कक्षीवान् ऋषि उषाका वर्णन करते हुए ऐसा कहते हैं—

५९ दक्षिणायाः पृथु रथः अयोजि, एन अमृतासो देवासः आ अस्थुः (१।१२३।१)— सब कार्य दक्षतासे करनेवाली उषाका विस्तृत रथ जोता गया है और उस रथपर अमर देव आकर बैठे हैं।

यहां ' **दक्षिणा** ' शब्द है। दक्षिणाका अर्थ यज्ञकी दक्षिणा है, जो याजकोंको दी जाती है। पर ' दक्षका भाव ' ऐसा भी इसका अर्थ होता है। दाक्षिण हस्तका अर्थ कार्य करनेमें प्रवीण हाथ। इसी तरह 'दक्ष उषा' ऐसा यहां इसका अर्थ है। दक्षिणा देनेवाली, धनदान करनेवाली वेतन देनेवाली ये भी इस पदके भाव हो सकते हैं। उषा धनका दान करती है ऐसा कई मंत्रोंमें वर्णन इससे पूर्व आचुका है। मंत्र क्रमाङ्क २६ में ' योग्य कार्य करनेवालेको सुयोग्य वेतन ' देनेका उल्लेख है। वही भाव दक्षिणा देनेवालीके अर्थमें पाठक देख सकते हैं। याजकोंको दक्षिणा दी जाती है वह भी तो एक प्रकारका कृतकर्मका वेतन ही तो है। इस दक्षिणाका भाव विचार करके पाठक जाने। यहां यह '**दक्षिणा**' उषाका गुण बोधक नाम है।

विहायाः अर्या मानुषाय क्षयाय चिकित्सन्ती कृष्णात् उदस्थात्— वह श्रेष्ठ उषा मानवोंके सुखदायी निवासके लिये ज्ञानपूर्वक यत्न करती है और उसने अपने आपको अन्धकारसे ऊपर उठाया है। यहाँ मनुष्योंका कर्तव्य है, वे अज्ञानान्धकारसे अपने आपको ऊपर उठावें, विपत्तिसे ऊपर उठकर संपत्तिको प्राप्त करें और मानवी जनताका सुखपूर्वक निवास हो ऐसा प्रयत्न करें।

६० **विश्वस्मात् भुवनात् पूर्वा अबोधि; बृहती सनुत्री वाजं जयन्ती** (१।१२३।२)- यह उषा सब प्राणियोंमें पूर्व उठती है, और यह बडी दान करनेवाली अन्न बल तथा धनको जीत लेती है। सबसे पूर्व उठकर अपने कार्य को लगनेसे अन्न प्राप्त होता है, बल बढता है और प्रयत्न करनेसे धन भी मिलता है।

युवतिः पुनर्भूः पूर्वहूतौ प्रथमा उषा आ अगन्, उच्चा व्यख्यत्— यह उषा तरुणी स्त्री पुनः पुनः आनेवाली प्रथम आहुती डालनेवाली सबसे प्रथम स्थानमें विराजमान होती है और उच्च स्थानसे सब देखती है। इस तरह तरुण स्त्री पुनः पुनः आकर कार्यका निरीक्षण करे, हवन करनेके लिये प्रथम आकर बैठे और उच्च स्थानमें विराजे और सब देखे।

यहां ' पुनर्भूः ' (पुन भू.) पद है। जो विधवा स्त्री पुनः विवाह करती है उसका वाचक यह पद है। वेदमें भी **' समानलोको भवति पुनर्भुवा अपरः पतिः '** (अथर्व० ९।५।२८) ऐसा मंत्र आया है। इसमें कहा है कि इस तरहका द्वितीय पति पहिले जैसा होता है। यद्यपि ' पुनर्भू ' का ऐसा प्रयोग वेदमें है, तथापि यहां वह अर्थ नहीं है। क्योंकि उषाका ऐसा कोई संबध इन सूक्तोंमें नहीं है। अत यहां उषाका वारंवार यहां होना, वारंवार आना, इतना ही अर्थ अभीष्ट है।

६१ **हे सुजाते उषः देवि ! मर्त्यत्रा भागं नृभ्यः विभजासि, अत्र दमूना देवः सूर्याय नः अनागसः वोचति** (१।१२३।३)— हे कुलीन उषा देवी ! मनुष्योंका तारण करती हुई तू मनुष्योंके लिये जिस समय धनका भाग देती है, उस समय दानशील देव सूर्यके सामने हमे निष्पाप बतावें।

मर्त्यत्रा नृभ्यः भागं विभजासि— मनुष्योंका तारण करनेके लिये मानवोंको धनका योग्य भाग देना चाहिये। आवश्यक भोग साधन न मिले तो मनुष्य सुखसे नहीं रह सकेंगे। यही अर्थात् धनका सुयोग्य बंटवारा ही मनुष्योंको सुखसे यहां रख सकता है और मनुष्योंको ' **अन्-आगस** ' निष्पाप बना सकता है। मनुष्योंसे जो पाप होता है वह धनका विषम भाग होनेसे होता है। मनुष्यको आवश्यक भोग न मिले, तो वह पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाता है। इसलिये यहां **' मर्त्यत्रा नृभ्यः भागं विभज '** मनुष्योंका रक्षण होनेके लिये मानवों को धनका विभाग योग्य रीतिसे मिले ऐसा कहा है।

६२ **सिषासन्ती द्योतना शश्वत् आगात्** (१।१२३। ४)— हविर्भाग लेनेवाली उषा प्रतिदिन आती है। (**नाम अधिदधाना**) कीर्तिको धारण करती है, स्तुति सुनती है और (**गृह गृहं याति**) घर घरको पहुंचती है, घर घरमें प्रकाश करती है और (**वसूनां अग्रं भजते**) धनोंमें श्रेष्ठ धन प्राप्त करती है।

स्त्री भी प्रतिदिन हवन करे, यश कमावे, घरमें प्रकाश करे और प्रयत्नसे श्रेष्ठ धन प्राप्त करे।

६३ **हे सूनृते उषः ! भगस्य स्वसा, वरुणस्य जामिः, प्रथमा जरस्व। पश्चा यः अघस्य धाता, स दध्या, तं दक्षिणया रथेन जयेम** (१।१२३।५)— हे उत्तम भाषण करनेवाली उषा ! तू भगकी और वरुणकी बहिन है। तू सब देवोंमें पहिली है, तू स्तुति प्रारंभ कर। पश्चात् जो पापी है उसको पकडेंगे और दक्षतापूर्वक चलनेवाले रथसे उसको पराभूत करेंगे।

स्त्री उत्तम और मीठा भाषण करे, सौभाग्यवाली हो, दिव्य भाववालोंमें पहिली हो, ईश्वरकी भक्ति करे, जो पापी होगा उसको घेरा और पकडा जाय और उसको दक्षतासे तथा वीरतासे पराभूत किया जाय।

६४ **सूनृता, पुरंधीः उदीरतां, शुशुचानासः अग्नयः उदस्थुः। विभातीः उषसः तमसा अप गूळहा स्पार्हा वसूनि आविष्कृण्वन्ति** (१।१२३।६)— स्तोत्र पाठ करो, अग्नि प्रदीप्त करो, उसमें हवन करो, तो तेजस्वी उषाएं गुप्त धनोंको प्रकट करेंगी।

६५ **विरूपे अहनी संचरेते, अन्यत् अपैति, अन्यत् अभ्येति, परिक्षितोः अन्या तमः गुहा अकः अन्या शोशुचता रथेन अद्यौत्** (१।१२३।७)- विरुद्ध रूपरंगवाली रात्री और उषा क्रमसे संचार करती हैं, एक आकर जाती है और

दूसरी आती है। घूमनेवाली इन दोनोंमें एक अन्धकारसे सबको ढंक देती है और दूसरी अपने तेजस्वी रथसे प्रकाश करती रहती है।

यहां रात्री और उषाका वर्णन है। क्रमसे रात्री और उषा आती है ऐसा यहां वर्णन है। यहां जो (**शोशुचता रथेन अन्या अचौत्**) तेजस्वी रथसे दूसरी प्रकाश रही ऐसा कहा है वह उषा है। अन्यत्र उषाका वर्णन ऐसा ही आया है। यहां दिनका वर्णन नहीं है। दिन न होते हुए रात्री और उषाका क्रमसे संचार उत्तरीय ध्रुवके प्रदेशमें ही सभव है। इस सूक्तका ऋषि भी '**दीर्घतमाका पुत्र**' अर्थात् बडे प्रदीर्घ अन्धकारका पुत्र ' कक्षीवान् है। ' कक्षी-वान् ' का अर्थ ' गुप्त स्थानवाला, अन्धेरे कमरेमें रहनेवाला, गुहास्थानमे रहनेवाला। ' प्रदीर्घ अधंकारका पुत्र अन्धेरे कमरेवाला ही हो सकता है। प्रदीर्घ अन्धकारकी रात्री उत्तरीय ध्रुवपर ही होती है और वहीं रात्री और उषाका क्रमसे एकके पीछे दूसरी का आना एक दो मास तक होता है। सूर्योदयके पूर्वकी यह स्थिति है और उष:कालका दर्शन भी प्रथम दक्षिण दिशामें ही वहां होता है। इस कारण भी उषाका नाम 'दक्षिणा' हो सकता है।

६६ **अद्य सदृशी, श्वः सदृशी, अनवद्या वरुणस्य दीर्घं धाम सचन्ते।** (१।१२३।८)-जैसी आज उषा आती है वैसी ही कल आती है। यह अनिन्द्य उषा वरुणके दीर्घ स्थानकी सेवा करती है।

एका एका त्रिंशतं योजनानि सद्यः क्रतुं परियन्ति— एक एक उषा तीस योजनोंकी परिक्रमा करती है।

इस मंत्रमें कहा है कि 'वरुणका दीर्घस्थान' उत्तर समुद्र होगा और ' तीस योजन उषाका परिभ्रमण ' तीस उषाओंका क्रमसे एकके पीछे एकका आना होगा।

६७ **प्रथमस्य अह्नः नाम जानती शुक्रा श्वित्रीची कृष्णात् अजनिष्ट** (१।१२३।९)—प्रथम दिनको जाननेवाली गौरवर्ण शुभ्र उषा काली रात्रीके काले अन्धकारमेंसे उत्पन्न हुई है। रात्रीके अन्धकारसे उषा प्रकट होती है।

ऋतस्य धाम न मिनाति, अहः अहः निष्कृतं आचरन्ती— सत्य व्रतका उल्लंघन नहीं करती और प्रतिदिन निश्चित स्थानपर ही आ जाती है।

रात्रीके काले अन्धकारसे उषाकी उत्पत्ति तो स्पष्ट है। सत्य नियमका उल्लंघन उषा कभी नहीं करती, और प्रतिदिन निश्चित स्थानपर जाती है। उत्तरीय ध्रुवमें प्रतिदिनकी उषा एकही स्थानपर आती नहीं परंतु अपना स्थान बदलती है परंतु वह बदलना भी निश्चित प्रमाणसे होता रहता है।

तरुणी स्त्री

६८ **हे देवि ! तन्वा शाशदाना कन्या इव इयक्षमाणं देवं एषि। संस्मयमाना युवतिः पुरस्तात् विभाती, वक्षांसि आविः कृणुषे** (१।१२३।१०)— हे दिव्य उषा ! तू अपने शरीरसे सुदर दीखनेवाली कन्याके समान अपने पूजनीय पतिदेवके पास जाती है। हंसती हुई तरुण स्त्री अपने पतिदेवके पास चमकती हुई जाती है और अपनी छाती को किंचित् खोलकर भी बताती है।

यह वर्णन तरुण स्त्रीका है जो रंगरूपसे सुन्दर है, शरीरसे सुदृढ और हृष्टपुष्ट है, वस्त्रभूषणोंसे सजी है, अपने पतिके ऊपर प्रेम करती है, पतिके विषयमें मनमें पूज्यभाव धारण करती है, वह हंसती और नेत्रकटाक्ष करती हुई चमकती दमकती हुई और अपनी पुष्ट छातीको दिखाती हुई पतिके सन्मुख आती जाती है। वैसी यह उषा अपने पति देवके सामने चमक रही है।

६९ **मातृमृष्टा योषा इव सुसंकाशा कं तन्वं दृशे आविः कृणुषे** (१।१२३।११)— मातासे परिशुद्ध की गई तरुणीके समान सुन्दर बनी हुई यह तरुणी अपने शरीरके अवयवोंको बतानेके लिये प्रकट करती है। अपने अवयवोंको ढंकतीसी दीखती है, पर खोलकर साथ बताती भी है।

हे उषः ! त्वं भद्रा वितरं व्युच्छ, अन्याः उषसः ते तत् न नशन्तः— हे उषा ! तू कल्याण करती हुई अधिक प्रकाशित हो। अन्य उषाएं तेजस्वितामें तेरी बराबरी नहीं कर सकती हैं।

मातासे परिशुद्ध रीतिसे सजाई हुई तरुण स्त्री जैसी अधिक शोभावाली दीखती है। पतिके पास जानेवाली तरुणी जिस समय उसकी माताके द्वारा सजाई जाती है उस समय वह अधिक ही सुशोभित दीखती है। यहां रात्रीको माता माना है और उषा उसकी तरुण पुत्री है जो प्रिय पतिदेवके पास जा रही है। उस समय वह तरुणी माताके द्वारा सजाई जाती है इसलिये विशेष शोभती है। यह वर्णन कितना हृदयंगम है इसका मनन पाठक करें।

७० घोडोंवाली और गौओंवाली तथा सबके द्वारा आदर करने योग्य यह उषा सूर्य किरणोंके साथ खेलती है, अन्धेरेको दूर करती है। यह कल्याण करनेवाली उषा दूर जाती सी दीखती है, पर फिरसे पुनः उसी स्थानपर आती है।

घोडोंवाली और गौओंवाली उषा है। इसका स्पष्टीकरण इससे पूर्व किया गया है। एक बार जाती है और वही फिर आती है। यह वर्णन तो स्पष्ट रीतिसे उत्तरीय ध्रुवका ही होगा क्योंकि अन्य स्थानकी उषा जानेपर दिन आता है, पश्चात् रात्री आती है और पश्चात उषा आती है। पर यहां की उषा तो **(परा यन्ति, पुनः आयन्ति)** जाती है और पुनः फिरसे आती है। उषाका जाना और उसीके साथ पुनः आना उत्तरीय ध्रुवको छोडकर किसी अन्य प्रदेशमें नहीं होता है।

७१ सूर्य किरणोंको देनेवाली, हमारे कल्याणकारी यज्ञका संपादन करनेवाली वर्णनीय उषा प्रकाशित होती रहे और वह हमें धनोंका प्रदान करे।

७२ अग्नि प्रज्वलित होनेपर उषा आती है और अन्धकारको दूर करती है। सूर्य अधिक तेजस्वी होता है। यह सविता देव हमें धन और द्विपात् और चतुष्पादोंको गमन करनेके लिये मार्ग कर देवे। अर्थात् उषा आनेके बाद हमारे मनुष्य तथा गौएं और घोडे चरनेके लिये मार्ग खुला हो जाय।

यहां '**इत्यै**' पद है। गमनका मार्ग खुला हो जाय। इस प्रार्थनासे गमनका मार्ग बंद हो जाता था, ऐसा सूचित हो जाता है। बर्फ पडनेसे मार्ग बंद हो जाता था वह फिर उषः काल होने और सूर्य आनेसे खुल जाता है। अथवा मार्ग करनेवाले बर्फको दूर करते है।

७३ दिव्य नियमोंके अनुसार अनेवाली उषा मानवी आयुको घटाती है। यह उषा गत उषाओंमें अन्तिम और आनेवाली उषाओंमे पहिली आज प्रकाशित हो रही है।

७४ यह स्वर्गीय कन्या उषा प्रकाशका रंगीन वस्त्र पहनती है और पूर्व दिशासे ऊपर आती हुई दीख रही है। यह अपने सत्यमार्गसे ठीक रीतिसे जाती है। जैसी विदुषी स्त्री योग्य मार्गसे जाती है उस तरह दिशाओंमें किसी तरहसे बाधा न पहुंचाती हुई यह उषा आरही है।

७५ शुन्ध्युवः वक्षः न उप उ अदर्शि (१।१२४।४)- शुद्ध स्वच्छ की हुई छाती जैसी सुंदर दीखती है उस तरह यह उषा स्वच्छ और सुन्दर दीख रही है।

नोधा इव प्रियाणि आविः अकृत— नवीन गायक जैसा अपने विशेष आलाप सुनाता है उस तरह यह उषा अपने प्रिय सुंदर अवयवोंको प्रकट करती है। जैसी तरुणी अपना सौंदर्य प्रकट करती है वैसी उषा अपनी प्रभा दिखा रही है।

सद्मसद् न ससतः बोधयन्ती— घरमें रहनेवाली स्त्री जैसी सोनेवाले घरवालोंको समयपर जगाती है, उस तरह उषा सबको जगाती है।

आयुषीणां शश्वत्तमा पुनः आ अगात्— बारंबार आनेवाली उषा पुनः आज आगयी है।

७६ अप्यस्य रजसः पूर्वे अर्धे गवां जनित्री केतुं प्र अकृत (१।१२४।५)-व्यापक अन्तरिक्ष लोकके पूर्व दिशाके आधे भागमें किरणोंको उत्पन्न करनेवाली उषाने अपना ध्वज फहराया है। उषा आ रही है।

पित्रोः उपस्था उभा आपृणन्ती वितर वरीयः व्युप्रथते— द्यावापृथिवी रूपी दोनों मातापिताओंके समीप रहकर यह उषा श्रेष्ठ प्रकाशको अन्तरिक्षमें भरपूर भर देती है। अन्तरिक्षका सब स्थान उषाके प्रकाशसे भर रहा है।

७७ एवा पुरुतमा दृशे कं न अजामिं, जामिं परि वृणक्ति—(१।१२४।६)—विस्तृत होनेवाली उषा सुंदरताको अनुभव होनेके लिये परकीयको अथवा स्वकीयको दूर नहीं करती। सब पर अपना प्रकाश डालती है और उसको सुंदर बना देती है। जो उसके सामने आता है उसको सुंदर बना देती है।

अरेपसा तन्वा शाशदाना, न अर्भात् ईषते, न महः, विभाती— निर्दोष शरीरसे प्रकाशित होनेवाली यह उषा, छोटेको तथा बडेको, किसीको भी त्यागती नहीं; सबको विशेष रीतिसे प्रकाशित करती है। संपूर्ण विश्व उषाके प्रकाशसे प्रकाशित होता है।

स्त्री भी अपने उत्तम निर्दोष और निष्पाप चारित्र्यसे सब पर प्रभाव डाले और अपने विषयमें सबोंके मनमें अच्छा आदर उत्पन्न करे।

७८ अभ्राता इव प्रतीची पुंसः एति (१।१२४।७)- भ्रातृहीन स्त्री जैसी पीछे हटकर अपने पिता आदिके पास निराश्रित होनेपर जाती है,

धनानां सनये गर्तारुक् इव— धनोंकी प्राप्तिके लिये जिस तरह कोई विधवा आदि स्त्री न्यायालयमें जाती है, उस तरह—

सुवासा जाया पत्ये इव उषा हस्रा इव अप्सः निरिणीते- सुंदर वस्त्र पहनकर पतिकी इच्छावाली यह उषा हंसती हुई अपनी सुदरताको प्रकट करती है।

यह मंत्र कुछ कठिनसा है। इसलिये इसका थोडा अधिक विवरण करना आवश्यक है। इस मंत्रपर सायण आचार्य लिखते हैं—

" अभ्राता इव भ्रातृरहिता इव पुंसः पित्रादीन् प्रति प्रतीची स्वकीयस्थानात् प्रतिनिवृत्तमुखी सती एति गच्छति । यथा लोके भ्रातृरहिता योषित् स्वोचितवासोलंकारलाभाय पितृन् एति । सति भ्रातरि स एव उचित-प्रदानादिना सम्यक् तोषयति, तद्भावात् पितरमेव प्राप्नोति । यद्वा । सति स्वभ्रातरि स एव पितुः पिण्डदानादिक संतानकृत्यं करोति । तस्याभावात् स्वयमेव तत्कर्तुं पित्रादीन् गच्छति । तद्वदियं उषा अपि स्वोचित-प्रकाशलाभाय स्वप्रकाशदानाय वा पितृभूतं सूर्यं आभिमुख्येन गच्छति । अयमेको दृष्टान्तः । तथा धनानां सनये गर्तारुगिव । गर्त इति गृहनाम । अत्रौचित्येन राजपुरुषैः न्यायनेतृभिः अधिष्ठित स्थानमुच्यते, तदारोहतीति गर्तारुक् । यथा लोके काचित् गतभर्तृका योषित् धनानां स्वकीय-रिक्थानां सनये लाभाय गर्तं आगच्छति । तां तु सभ्या विचार्य...तदीयं धनं वितरन्ति ।

(सायन भाष्य ऋ० १।१२४।७)

निरुक्तमें यही मंत्र है—

अभ्रातृकेव पुंसः पितृन् एति अभिमुखी सन्तानकर्मणे पिण्डदानाय न पतिं गर्तारोहिणीव धनलाभाय दाक्षिणाजी । गर्तः सभा स्थाणुः गृणातेः सत्यसंगरो भवति । तं तत्र याऽपुत्रा याऽपतिका सा रोहति तां तत्राक्षैराघ्नन्ति सा रिक्थं लभते । (नि० ३।५)

इस सबका भाव वही है कि जो हमने ऊपर दिया है। 'कोई स्त्री जिसको भाई नहीं है वह पिताके घर जाकर आश्रय लेती है, तथा जो विधवा होती है अथवा निराश्रित होती है वह न्यायालयमें जाती है और अपने लिये पंचोंकी अनुकूलतासे धन प्राप्त करती है, उस तरह यह उषाके पास दिनरूपी भाई न होनेसे अपने पिता द्युलोकके पास आती है और वहां पिताके आश्रयसे रहती है। तथा विधवा निराश्रित स्त्री जैसी न्यायालयमें जाती है और वहांके पंचोंके सन्मुख अपना कहना कहकर हिस्सेका धन प्राप्त करती है, उस तरह यह उषा पति न होनेके कारण आकाशस्थित पंचोंके न्यायालयमें जाती है, और आकाशस्थ देवोंकी पचायतके सामने अपना कथन कहकर धन प्राप्त करती है और धनवती होती है। इस तरह यह उषा निराश्रित स्त्री जैसी कवीने वर्णन की है।

इसी मंत्रमें तीसरी उपमा यह है कि " सुन्दर वस्त्र पहन कर पतिके साथ रहकर आनंद प्राप्त करनेके लिये हंसकर अपने मुखचन्द्रके दांत दिखानेवाली तरुणीके समान यह उषा है।

ये तीन उपमाएं यहां दी हैं। ऐसी निरुक्तकार और सायणाचार्यका भाव है। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी भी इसी तरह इस मंत्रका अर्थ करते हैं—

" जैसे बिनाभाईकी कन्या अपनी प्रीतिसे चाहे हुए पतिको आप प्राप्त होती है वा जैसे न्यायाधीश राजा राजपत्नी और धनादि पदार्थोंके विभाग करनेके लिये न्यायासन अर्थात् राजगद्दीको प्राप्त होता वा जैसे हंसमुखी स्त्री आनन्द युक्त पतिको प्राप्त होती और अच्छे रूपसे अपने हाव भावको प्रकाशित करती वैसे ही यह प्रातः समयकी वेला है। (ऋ० १।१२४।७)

सायण भाष्य और स्वामी भाष्यमें थोडा अर्थान्तर है। पर भ्रातृरहित स्त्री, न्यायालयमें जाना समान है। जो अर्थका थोडा परिवर्तन है वह पाठक जान सकते हैं। इस अर्थसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वैदिक समयमें भी अनाथ स्त्रीको न्यायालयमें जाना पडता था और वहां पंचोंके द्वारा अपना धन प्राप्त करना पडता था। स्त्रीको भाई न रहा तो पिताके आश्रयको वह आती थी अथवा स्वयं अपना विवाह कर लेती थी। इस मंत्र पूर्वार्धमें जो उषाका वर्णन है वह निराश्रित स्त्रीका जैसा वर्णन है। इसी मंत्रके उत्तरार्धमें स्त्रीका आनन्दके साथ पतिके पास जाना लिखा है। निराश्रित अवस्थामें भी स्त्रियोंको आजीविकाके लिये योग्य धन उसके संबंधियोंसे मिलता था, राजसभाके तथा न्यायालयके पंच स्त्रीके धनका निर्णय करके उसको धन, दिलवा देते थे, ऐसा यहां इस मंत्रसे पता लगता है। कुटुंबमें स्त्री निराश्रित हुई तो भी राजन्यायालयसे उसको आश्रय मिलता था। स्त्रीके अधिकारका इतना पालन वैदिक कालमें होता था।

७९ स्वसा ज्यायस्यै स्वसे योनिं आरैक् (१।१२४।८)— छोटी बहिन अपनी बडी बहिनको स्थान कर देती है। यहां छोटी बहिन रात्री और बडी बहिन उषा है। रात्री उषाको स्थान कर देती है।

अस्याः प्रतिचक्ष्य इव अपैति— इस उषाको देखते ही वह रात्री दूर चली जाती है। उषाको आती हुई देखते ही रात्री चली जाती है। और उषाको स्थान कर देती है।

सूर्यस्य रश्मिभिः व्युच्छन्ती समनगा इव व्राः आञ्जि अंक्ते— सूर्यके किरणोंसे प्रकाशनेवाली यह उषा सम्यक् चलनेवाले किरण समूहोंके समान सुरुपताको समानतया व्यक्त करती है।

८० जो उषाएं इससे पूर्व जा चुकी हैं, उनमेंसे अन्तिम उषाके पीछेसे एक एक नयी उषा क्रमसे आती है। इसलिये पूर्वकी तरह ये आनेवाले नये दिन अर्थात् नयी उषाएं हमारे लिये पर्याप्त धन ले आयें और उस धनके साथ ये उषाएं प्रकाशती रहे।

८१ हे मघोनि उषः! पृणतः प्रबोधय (१।१२४।१०)- हे धनवाली उषा! दाताओंको जगाओ।

अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु— न जागनेवाले, सोते रहनेवाले कंजूस बनिये सोते रहें, उनको लाभ न मिले, क्योंकि वे दान नहीं करते।

हे मघोनि मघवद्भ्यः रेवत् उच्छ— हे धनवाली उषा! जो धनका दान करते, जो अपने धनका यज्ञ करते हैं, उनके लिये धनके साथ प्रकाश दे दो।

हे सूनृते! जरयन्ती स्तोत्रे रेवत् उच्छ— हे शुभ भाषण करनेवाली उषा! प्राणियोंकी आयु कम करनेवाली तू स्तोत्र पाठ करनेवालेके लिये धनके साथ प्रकाश दे। अथवा प्रकाशके साथ धन दे।

८२ यह तरुणी स्त्री उषा पूर्व दिशासे प्रकाश रही है। इसने अरुण रंगवाले घोडे अपने रथको जोते हैं। यह उषा अब विशेष प्रकाशती जायगी, वह प्रकाशका ध्वज इधर आकर फहरेगा। और घर घरमें यज्ञका अग्नि जलता रहेगा।

८३ ते व्युष्टौ सत्यां वयः उदपप्तन्— उषाके प्रकाश होनेपर पक्षी अपने घोंसलोंसे बाहर उडने लगते हैं।

ये पितुभाजः नरः— जिनके पास अन्न है वे भी उठकर यज्ञ करने लगते हैं। उषाके उदयके पश्चात् यह ऐसा होता है।

हे देवि! अमासते दाशुषे मर्त्याय भूरिवामं वहसे— हे उषा देवि! अपने घर रहकर यज्ञ और दान करनेवाले मनुष्यके लिये तू बहुत धन लाकर दे दो।

८४ हे स्तोभ्याः! मे ब्रह्मणा अस्तोढ्व—हे प्रशंसनीय उषाओ! मेरे इस स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति हो रही है क्योंकि तुम स्तुतिके योग्य हो।

हे उषासः! उशती अवीवृधध्वं— हे उषाओ! तुम हमारी उन्नतिकी इच्छा करके हमारी उन्नति करो।

हे देवीः! युष्माकं अवसा शतिनं सहस्रिणं च वाजं सनेम-- तुम्हारे संरक्षणसे सुरक्षित होकर हम सैकडों और हजारों प्रकारके धन अन्न और बल प्राप्त करेंगे।

विश्वामित्र ऋषिका उषा वर्णन

(ऋ. ३।६१।१-७)

(गाथिनो विश्वामित्रः। उषाः। त्रिष्टुप्)

८५ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥ १ ॥

८५ (**वाजेन वाजिनि**) **अन्नसे अन्नवाली** (**मघोनि उषः**) **धनवाली उषा!** (प्रचेताः) ध्यान देती हुई (गृणतः **स्तोमं जुषस्व**) **स्तोताओंके स्तोत्र श्रवण कर। हे** (**विश्ववारे देवि**) **सबके द्वारा स्वीकारके योग्य उषा देवी! तू** (पुराणी **युवतिः**) **पुरातन होनेपर भी तरुणी तथा** (**पुरंधिः**) **बडी बुद्धिमती** (**व्रतं अनुचरसि**) **व्रतका अनुष्ठान करती है** ॥ (१)

८६ उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥ २ ॥
८७ उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥ ३ ॥
८८ अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी।
स्व १ र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥ ४ ॥
८९ अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥ ५ ॥
९० ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात्।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥ ६ ॥
९१ ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन् वृषा मही रोदसी आ विवेश।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥ ७ ॥

---

८६ हे (देवि उषः) उषा देवि ! (चन्द्ररथा) चन्द्रके समान सुंदर रथमें बैठनेवाली (सूनृता ईरयन्ती) मधुर वाणीको प्रेरित करनेवाली, (अमर्त्या विभाहि) अमर स्वरूपिणी तू प्रकाशित हो। (ये पृथुपाजसः हिरण्यवर्णाः) जो विशेष बलवान तथा सुवर्णके समान रंगवाले और (सुयमासः अश्वाः) स्वाधीन रहनेवाले घोडे हैं वे (त्वा आ वहन्तु) तुझे यहां ले आवें ॥ (२)

८७ हे (उषः) उषा ! (विश्वा भुवनानि प्रतीची) सब भुवनोंके सन्मुख (अमृतस्य केतुः) अमृतके ध्वजके समान (ऊर्ध्वा तिष्ठसि) तू उच्च स्थानमें खडी रहती है। हे (नव्यसि) नित्य नवीन बननेवाली उषा ! (चक्रं इव) चक्रके समान (समानं अर्थं चरणीयमाना) एक ही अर्थ प्राप्तिके लिये चलनेवाली तू (आ ववृत्स्व) पुनः पुनः फिरती रह ॥ (३)

८८ (स्यूम इव अवचिन्वती) प्रकाश किरणके समान अन्धकारको दूर करनेवाली (मघोनी उषा) धनवाली (स्वसरस्य पत्नी) दिनकी पत्नी उषा (याति) चलती है। (स्वः जनन्ती) प्रकाशको प्रकट करनेवाली (सुभगा सुदंसा) भाग्यवाली सुंदरी (दिवः पृथिव्याः आन्तात्) द्युलोक और पृथिवीके अन्तिम भाग तक (आ पप्रथे) प्रकाशित होती है ॥ (४)

८९ हे स्तोता लोगो ! (वः अच्छ) आप सबके सन्मुख (विभातीं देवीं उषसं) प्रकाशनेवाली उषा देवीकी (नमसा वः सुवृक्तिं प्रभरध्वं) नमस्कार पूर्वक तुम सब स्तुति करो। (मधुधा) मधुरताका धारण करनेवाली उषा (दिवि ऊर्ध्वं पाज अश्रेत्) द्युलोकमें उच्च भागपर अपना तेज रखती है। (रण्वसंदृक् रोचना) रमणीय दर्शनवाली तेजस्विनी उषा (प्र रुरुचे) प्रकाशित हो रही है ॥ (५)

९० (ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि) सत्यपालन करनेवाली यह उषा द्युलोकपर आनेवाले किरणोंसे जानी गई है। यह (रेवती) धनसंपन्न उषा (रोदसी चित्रं अस्थात्) द्यावापृथिवीपर विविध रंगवाली शोभाको स्थापित कर रही है। हे (अग्ने) अग्नि ! (आयतीं विभातीं उषसं) आनेवाली इस प्रकाशित उषाके प्रति (वामं द्रविणं भिक्षमाणा एषि) स्वीकरणीय धनकी अपेक्षा करता हुआ तू जाता है ॥ (६)

९१ (वृषा ऋतस्य बुध्ने) बलवान सूर्य दिनके प्रारंभमें (उषसां इषण्यन्) उषाओंको प्रेरित करता हुआ (मही रोदसी आ विवेश) विशाल द्यावा पृथिवीमें प्रविष्ट हुआ है। (मित्रस्य वरुणस्य मही माया) मित्र और वरुणकी यह महती शक्ति (चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे) सुवर्ण के सदृश रमणीय उषाके समान प्रकाश चारों ओर धारण करती है ॥ (७)

विश्वामित्र ऋषिका उषा वर्णन

विश्वामित्रके उषा देवताके ७ मंत्र हैं। इनमें ये ऋषि इस तरह उषाका वर्णन करते हैं–

आदर्श तरुणी

८५ वाजिनी, मघोनी, प्रचेताः विश्ववारा, देवी, पुराणी, युवतिः पुरंधिः (३।६१।१)- (वाजिनी) अन्न के साथ रहनेवाली, उत्तम अन्न तैयार करनेवाली, (मघोनी) धनवाली, ऐश्वर्यवाली, (प्रचेताः) उत्तम अन्तः-करणसे युक्त, (विश्व-वारा) सबसे श्रेष्ठ, सबके द्वारा प्रशंसित, सबके द्वारा आदर करने योग्य, (देवी) प्रकाशमान, तेजस्विनी, (पुराणी) प्राचीन समयमें जैसी थी वैसी ही आज भी जो आती है, (पुरंधिः) विशेष बुद्धिमती (युवति) तरुणी यह उषा है। यह उषा (व्रतं अनुचरति) अपने नियमोंका पालन करती है। अपने व्रतोंका अनुष्ठान करती है।

इस मंत्रमें आदर्श तरुणीका वर्णन उषाके मिषसे किया है। यह उत्तम बुद्धिमती, विदुषी, धर्मनियम पालनमें तत्पर है।

८६ चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती अमर्त्या(३।६१।२)- यह उषा चन्द्रके समान सुन्दर आल्हाददायक रथमें बैठती है, मधुर तथा शुभ भाषणकी प्रेरणा करती है और यह अमर है। यह नित्य तरुणी है। इस मंत्रमें आर्य कन्याका वर्णन ऋषि ऐसा करता है कि वह तरुणी सुन्दर रथमें बैठती है। तथा इस रथ-को उत्तम घोडे जोते रहते है--

पृथु-पाजसः हिरण्यवर्णाः सुयमासः अश्वाः आवहन्ति—बहुत बलवाले, सुवर्ण जैसे रंगवाले अर्थात् लाल और पीले रंगके सुशिक्षित होनेके कारण सदा स्वाधीन रहनेवाले घोडे इस तरुणीके रथको खींचते हैं। तरुणी ऐसी हो कि जो ऐसे सुन्दर रथमें बैठकर अपने कार्यकर्ताओंका निरीक्षण प्रतिदिन करती रहे।

८७ यह उषा (अमृतस्य केतुः) अमरत्व प्राप्तिका ज्ञान देती है, अमृतका ध्वज फहराती है। अर्थात् अमृतत्त्व प्राप्तिका मार्ग बताती है, (विश्वा भुवनानि प्रतीची) सब भुवनोंका निरीक्षण करती है, (नव्यसी) नवीन जैसी, जैसी नयी जन्मी कन्या सुन्दर दीखती है, वैसी सुन्दर दीखनेवाली, (समानं अर्थं चरणीयमाना) एक ही ध्येयकी प्राप्तिके लिये, एक ही साध्य सिद्ध करनेके लिये प्रयत्न करनेवाली (चक्रं इव आववृत्स्व) चक्र घूमता है वैसी सतत भ्रमण करती है

यहा ऐसी तरुणी स्त्रीका वर्णन किया है कि जो सब कार्य-कर्ताओंका निरीक्षण करती है, एक ध्येयकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करती है, उसकी सिद्धिके लिये बारंबार यत्न करती है अर्थात् प्रथम वारके यत्नसे सिद्धि नहीं हुई तो सिद्धि मिलने तक पुनः पुनः यत्न करती है। निराशा जिसके पास नहीं है।

८८ (स्यूम इव अवचिन्वती) प्रकाशके किरणोंके समान अन्धेरेको दूर करती है, अपने घरमें प्रकाश करती है। (स्व-रस्य पत्नी मघोनी उषा याति) दिन रूपी पुरुषकी पत्नी, (स्व-सरस्य पत्नी) अपने बलसे आगे बढनेवाले पुरुषार्थी वीरकी सह धर्मचारिणी यह उषा रूपी स्त्री पतिके साथ अपनी प्रगति करती है। (स्वः जनन्ती) अपना प्रकाश, अपने आत्माकी शक्ति प्रकट करनेवाली, (सु-भगा सु-दंसा) उत्तम भाग्य-वाली, धन ऐश्वर्यसे युक्त, उत्तम सुंदरी (दिवः पृथिव्याः आन्तात् आ पप्रथे) द्युलोक और पृथिवीके अन्तिम भाग तक यह अपना प्रकाश फैलाती है। अपना प्रभाव सर्वत्र फैलाती है।

८९ मधु-धा रण्व-सदृक् रोचना प्ररुरुचे— मधुरताका धारण करनेवाली सुन्दर दीखनेवाली तेजस्विनी उषा प्रकाश रही है। स्त्री मधुरिमाका धारण करे, रमणीय दीखे, तेजस्विनी हो और प्रभावशालिनी बने।

देवीं उषसं नमसा सुवृक्तिं प्रभरध्वं— दिव्य उषाको नमस्कार करो और उसकी प्रशंसा गाओ। पूर्वोक्त प्रकारकी स्त्रीकी सब लोग प्रशंसा गाये और उसको नमस्कार करें।

९० ऋतावरी दिवः अर्कैः अबोधि— यह सत्यका पालन करनेवाली उषा द्युलोकमें फैले किरणोंसे जाग उठी है। स्त्री सत्यका पालन करे, सरल आचरण करनेवाली हो। उषः-कालमें उठे।

*

रेवती रोदसी चित्रं अस्थात्— धनवाली अथवा शोभावाली यह तरुणी (उषा) आकाशके फलक पर सुन्दर रंगोंका चित्र-खींचती है । विविध रंगोंका सुन्दर चित्र निकालती है। आकाश-पृथिवी यह चित्र फलक है जिसपर चित्र चित्रित किया जाता है। इस फलक पर उषा यह तरुण स्त्री आती है और विविधरंगोंसे सुन्दर चित्र खींचती है। चितारती है। तरुण स्त्रीको चित्रकला आनी चाहिये और सुन्दर दृश्य देखकर उनको चित्रित करना चाहिये।

९१ **वृषा, ऋतस्य बुध्ने, उषसां इषण्यन् मही रोदसी आविवेश (ऋ० ३।६१।७)**— बलवान् पिता (सूर्य) सत्यके सत्कर्म प्रवर्तक दिनके-प्रारंभमें, उषाओंको प्रेरित करता है और बडे द्यावापृथिवीके अन्दर प्रविष्ट होता है। सूर्य प्रथम इस तरहकी उषाओंको प्रेरित करता है और पीछेसे दिनको भेजता है और स्वयं प्रकट हो जाता है। .

मित्रस्य वरुणस्य मही माया चन्द्रा इव भानुं पुरुत्रा विदधे— मित्र वरुणकी बडी कुशलता यह है कि जिससे उषःकालमें रमणीय प्रकाश चारों ओर फैलता है। यह सब उषाका प्रभाव है।

यह विश्वामित्र ऋषिका उषाका वर्णन है। इसमें प्रौढ स्त्री जैसा उषाका वर्णन है। यहां सूर्यको पिता, दिनको भाई, रात्रीको बहिन और उषाको पुत्री कहा है। यह सब वर्णन अत्यंत हृदयंगम और बोधप्रद है। स्त्रीके लिये कर्तव्यका बोध इस सूक्तसे मिल सकता है।

गौतमपुत्र वामदेव ऋषिका
उषा वर्णन

(ऋ० ४।५१।१-११)

(वामदेवो गौतमः । उषाः । त्रिष्टुप् ।)

९२ इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात् ।
नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाय ॥ १ ॥

९३ अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु ।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥ २ ॥

९४ उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान् राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥ ३ ॥

---

९२ (इदं उ त्यत् पुरुतमं) यह निश्चयसे वह अत्यंत विशाल और (वयुनावत् ज्योतिः) ज्ञान देकर कर्म करानेवाला तेज (पुरस्तात् तमसः अस्थात्) पूर्व दिशामें अन्धकारमेंसे ऊपर आ रहा है। (नूनं) निःसंदेह वे (विभातीः दिवः दुहितरः उषसः) प्रकाशनेवाली द्युलोककी पुत्री उषाएँ (जनाय गातुं कृण्वन्) लोगोंके लिये मार्ग कर रही हैं ॥ (१)

९३ (चित्राः उषसः पुरस्तात् अस्थुः उ) ये सुन्दर उषायें पूर्व दिशामें ऊपर खडी हो रही हैं। (अध्वरेषु मिताः स्वरवः इव) जिस तरह यज्ञोंमें यूप खडे होते हैं। वे उषाएं (व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः) गौओंके बाडोंके अन्धकारमय द्वारोंको खोलती हैं और (शुचयः पावकाः अव्रन्) शुद्ध पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्यापती हैं ॥ (२)

९४ (अद्य) आज (उच्छन्तीः मघोनीः उषसः) प्रकाशनेवाली धनवाली उषाएँ (भोजान् राधो-देयाय चितयन्तः) भोजन देनेवालोंको धन देनेके लिये जगाती हैं। (अचित्रे तमसः विमध्ये अन्तः) एक जैसे अन्धकारके अन्दर (अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु) न जागनेवाले कंजूस बनिये सोते रहें ॥ (३)

९५ कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥ ४ ॥

९६ यूयं हि देवीॠतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥ ५ ॥

९७ क स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुॠभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥ ६ ॥

९८ ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥ ७ ॥

९९ ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्समानतः समना पप्रथानाः ।
ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥ ८ ॥

१०० ता इन्न्वे३व समना समानीरमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।
गूहन्तीरभ्वमसितं रुशद्भिः शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुचानाः ॥ ९ ॥

---

९५ हे (देवीः उषसः) दिव्य उषाओ ! (वः सनयः नवो वा सः यामः) तुम्हारा पुराना अथवा नया वह रथ (अद्य कुवित् बभूयात्) आज बहुत वार चलता रहे । (येन रेवतीः) जिस रथसे तुम धनवाली उषायें (नवग्वे अंगिरे) नौ गौवोंवाले अंगिरसके लिये और (दशग्वे सप्तास्ये) दस गौवोंवाले सप्तास्यके लिये (रेवत् ऊष) धनयुक्त प्रकाशती रह ॥ (४)

९६ हे (देवीः उषस.) दिव्य उषाओ ! (यूयं हि ऋतयुग्भिः अश्वैः) आप सीधे जोते जानेवाले घोडोंसे, (भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ) सब भुवनोंमें चारों ओर घूमती हैं और (ससन्तं द्विपात् चतुष्पाद् जीवं) सोनेवाले द्विपाद और चतुष्पाद जीवोंको (चरथाय प्रबोधयन्तीः) घूमनेके लिये जगाती हैं ॥ (५)

९७ (यया ऋभूणां विधाना विदधुः) जिसके साथ ऋभुओंके कार्य हुए वह उषा (आसां पुराणी कतमा क स्वित्) इनमें पुराणी कौनसी और कहां है ? (यत् उषसः शुभ्राः शुभं चरन्ति) जब तेजस्वी उषाएं शोभा प्रकट करती है, तब (अजुर्याः सदृशी. न विज्ञायते) नित्य नवीन होनेपर भी सदृश होनेसे कौन नूतन और कौन पुराणी है इसका पता नहीं चलता ॥ (६)

९८ (ताः घ ताः भद्राः) वे निःसंदेह कल्याण करनेवाली (उषसः) उषाएं (पुरा आसुः) पूर्व समयमें हो चुकी हैं । वे (अभिष्टिद्युम्नाः) आते ही धन देनेवाली और (ऋत-जात-सत्याः) सत्य और सरल होनेमें प्रसिद्ध हैं। (यासु ईजानः) जिन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला (उक्थैः शशमानः) स्तोत्रोंसे प्रशंसा करनेवाला (स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणं आप) स्तवन और प्रशंसा करता हुआ तत्काल ही धन प्राप्त करता है ॥ (७)

९९ (ताः) वे उषाएं (पुरस्तात् समनाः) पूर्व दिशामें समान रीतिसे (आ चरन्ति) चारों ओर फैल रही हैं । (समनाः समानतः पप्रथानाः) वे समान उषाएं समान अन्तरिक्षके प्रदेशसे फैलती हैं । (ऋतस्य सदसः बुधानाः) यज्ञके स्थानको बताती हैं । ये (देवीः उषसः) दिव्य उषाएं (गवां सर्गः न) गौवोंके समूहके समान (जरन्ते) प्रशंसित होती हैं ॥ (८)

१०० (ता इत् नु एव उषसः) वे ही उषाएं (समनाः समानीः) समान एक रंगरूपवाली (अमीतवर्णाः चरन्ति) अनेक रंगोंसे युक्त होकर संचार करती हैं । (अभ्वं असितं गूहन्तीः) विशाल अन्धकारको ढंक देती हैं और (रुशद्भिः तनूभिः) तेजस्वी शरीरोंसे (शुक्राः शुचयः रुचानाः) शुद्ध प्रकाशोंको चमका देती हैं ॥ (९)

१०१ रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ १० ॥
१०२ तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥ ११ ॥

(ऋ० ४।५२।१-७)
(वामदेवो गौतमः। उषाः। गायत्री)

१०३ प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः। दिवो अदर्शि दुहिता॥ १ ॥
१०४ अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषाः ॥ २ ॥
१०५ उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे ॥ ३ ॥
१०६ यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि। प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥ ४ ॥
१०७ प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः। ओषा अप्रा उरु ज्रयः॥ ५ ॥
१०८ आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः। उषो अनु स्वधामव ॥ ६ ॥
१०९ आ द्यां तनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम्। उषः शुक्रेण शोचिषा॥ ७ ॥

---

१०१ हे (दिवः दुहितरः) द्युलोककी पुत्री! आप (विभातीः देवीः) प्रकाशनेवाली देवियां हैं, (अस्मासु प्रजावन्तं रयिं यच्छत) हमें पुत्रपौत्रादि युक्त धन दे दो। (स्योनात् वः प्रतिबुध्यमानाः) सुखसे तुम्हारे द्वारा जागृत होनेवाले हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम वीरताके स्वामी हों॥ (१०)

१०२ हे (दिवः दुहितरः उषसः) द्युलोककी पुत्री उषाओ! मैं (यज्ञ केतुः) यज्ञका ध्वज जैसा यज्ञकर्ता (विभातीः वः तत् उपब्रुवे) प्रकाशनेवाली तुमको वह कहता हूं कि (वयं जनेषु यशसः स्याम) हम सब लोगोंमें यशस्वी हों और (तत् द्यौः पृथिवी देवीः च धत्तां) वह हमारी इच्छा द्यौ और पृथिवी देवी सफल करे॥ (११)

१०३ (स्या सूनरी जनी) वह उत्तम नेतृत्व करनेवाली, फल देनेवाली और (स्वसुः परि व्युच्छन्ती) अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम समयमें प्रकाशती हुई यह (दिवः दुहिता प्रति अदर्शि) स्वर्गकन्या दीख रही है॥ (१)

१०४ (अश्वा इव चित्रा) घोडीके समान सुंदर (अरुषी) तेजस्विनी (गवां माता) किरणोंकी जननी (ऋतावरी) सरल कर्म करनेवाली (उषा अश्विनोः सखा अभूत) यह उषा अश्विदेवोंकी सखी है॥ (२)

१०५ हे (उषः) उषा! (उत अश्विनोः सखा असि) तू अश्विदेवोंकी सखी है, (उत गवां माता असि) और किरणोंकी माता है (उत वस्व ईशिषे) और तू धनकी स्वामिनी है॥ (३)

१०६ हे (सूनृतावरि) मधुर भाषण करनेवाली उषा! (यावयत्-द्वेषसं त्वा) शत्रुओंको दूर करनेवाली तू है ऐसी तुझ (चिकित्वत्) ज्ञानवतीको (स्तोमैः प्रति अभुत्स्महि) स्तोत्रोंसे हम जाग्रत करते हैं॥ (४)

१०७ (भद्राः रश्मयः) कल्याणकारक किरणें (गवां सर्गाः न) गौओंके झुण्डके सदृश (अदृक्षत) दीख रही हैं, वह (उषाः) उषा (उरु ज्रयः आ अप्राः) विशेष तेजको सर्वत्र भर देती है॥ (५)

१०८ हे (विभावरि उषः) चमकनेवाली उषा! (आपप्रुषी) तेजसे जगत्को भर देनेवाली तू (ज्योतिषा तमः वि आवः) प्रकाशसे अन्धकारको दूर करती है। (अनु स्वधां अव) पश्चात् तू अपनी धारक शक्तिका संरक्षण कर॥ (६)

१०९ हे (उषः) उषा! (रश्मिभिः द्यां आतनोषि) किरणोंसे द्युलोकको भर देती है तथा (शुक्रेण शोचिषा) शुद्ध प्रकाशसे (प्रियं उरु अन्तरिक्षं आ) प्रिय विस्तीर्ण अन्तरिक्षको भी भर देती है॥ (७)

वामदेव ऋषिका उषा वर्णन

वामदेव ऋषि उषाके वर्णनमें कहते है—

९१ इदं पुरुतमं वयुनावत् ज्योतिः पुरस्तात् तमसः अस्थात् (४।५१।१)— यह महान् और कर्मोंमें मनुष्योंको प्रवृत्त करनेवाला तेज पूर्व दिशासे अन्धकारमेंसे ऊपर आरहा है देखो !

नूनं विभातीः दिवः दुहितरः उषसः जनाय गातुं कृण्वन्— निःसन्देह ये प्रकाशनेवाली स्वर्गकन्या उषाएं लोगोंके लिये प्रगति करनेका मार्ग बता रही हैं।

वामदेव ऋषिके दो सूक्त यहा दिये है। इनमें इस प्रथम (४।५१ वे) सूक्तमें उषाः पद बहुवचनमें हैं। इससे अनेक उषाओंका बोध होता है। अनेक उषाओंका साथ साथ आना किसी अन्य स्थानमें नहीं होता, सिवा उत्तरीय ध्रुवके प्रदेशके। इसलिये इसका अधिक विचार होना चाहिये। इस सूक्तमें इसके सूचक और बोधक जो वर्णन होंगे, उनका विचार हम क्रमसे करेंगे। जिससे पाठकोंको पता लग जायगा कि सूक्तका आशय क्या है।

९२ चित्राः उषसः पुरस्तात् अस्थुः— ये विलक्षण प्रकाश देनेवाली उषाएं पूर्व दिशासे ऊपर आ रहीं है। जैसे—

अध्वरेषु मिताः स्वरवः इव— जैसे यज्ञमें यज्ञस्तंभ खडे होते हैं, वैसी ये उषाएं प्रकाशके साथ ऊपर आगयीं हैं।

व्रजस्य तमसः द्वारा उच्छन्तीः शुचयः पावकाः अव्रन्— गौओंके वाडेके अन्धकारके कारण ढंके हुए द्वार ये उषाएं खोलती हैं, और शुद्ध पवित्र प्रकाशसे विश्वको व्यापती हैं। प्रदीर्घ अन्धकारमें गौवें गोशालामे ही रहती हैं। जब उषःकाल होता है तब द्वार खोले जाते हैं, गौवें बाहर आती हैं और चरनेके लिये जाती हैं। यहां गौओंका भाव प्रकाश किरण ऐसा भी है। इस मंत्रमें भी उषाका बहुवचनी प्रयोग है।

९४ अध उच्छन्तीः मघोनीः उषसः भोजान् राधो-देयाय चितयन्तः— आज अन्धकारको दूर करनेवाली ऐश्वर्यवाली उषाएं धनी लोगोंको यज्ञके लिये धनका दान करनेके लिये जगाकर प्रेरित करें। उषःकालमें यज्ञ शुरू हो और उसमें धनी लोग अपना धन पर्याप्त प्रमाणमें लगा देवें।

अबुध्यमानाः पणयः अचित्रे तमसः विमध्ये अन्तः ससन्तु— जो न जागनेवाले कंजूस बनिये हैं वे गाढ अन्धकारमें सोते रहें। उनको कभी ज्ञान प्राप्त नहीं होगा और वे अन्धकारमे ठोकरे खाते रहेंगे। जो यज्ञके लिये अपना धन देंगे व उन्नतिको प्राप्त करेंगे, संघटित होकर उत्कर्षको प्राप्त करेंगे।

९५ हे दिव्य उषाओ ! तुम्हारा पुराना या नया रथ आज बहुत चले। वह बहुत धन लेकर नवग्व आंगिरस और दशग्व सप्तास्यके लिये धनके साथ प्रकाश देवे।

नौ गौवोंवालेको नवग्व कहते हैं। नौ मास तक यज्ञ करनेवालेको भी नवग्व कहते हैं। इसी तरह दस गौवें पास रखनेवालेको तथा दस महिनेतक यज्ञ करनेवालेको दशग्व कहते हैं। उत्तरीय ध्रुवमें घना अन्धकार दो वा तीन मासका, एक मास अर्थात् तीस उषाएं होकर नौ या दस मास तक प्रकाशमें यज्ञ किया जाता है। इसलिये नौ अथवा दस मास यज्ञ करनेका वर्णन उस स्थानमें सार्थ होता है। वहां छः मास रात्री होती है, पर इसमें ३० दिन उषःकाल और ३० दिन सायं संध्या ऐसे दो मास होते हैं। गाढ अन्धकारके दो तीन मास होते हैं जिनमें न तो उषःकालका प्रकाश रहता है और नाही सायं संध्या रहती है। इस तरह कईयोंके मतसे दस मास और कईयोंके मतसे नौ मास यज्ञ होते हैं। जिनमें प्रकाश दर्शन नहीं होता केवल अन्धकार ही रहता है ऐसे दो मास होते हैं। ऐसा माननेवाले इन दो महिनोंको छोड देते हैं और थोडा प्रकाश दीखने लगा तो यज्ञ शुरू कर देते हैं। दूसरे उषःकाल अच्छी तरह शुरू होनेपर यज्ञ शुरू करते हैं। इन लोगोंकी संमतिसे नौ महिने यज्ञके लिये मिलते हैं। आंगिरस संप्रदाय नौ मासोंका यज्ञ करनेवाला और सप्तास्य सप्रदाय दस महिनोका यज्ञ करनेवाला है। इस मंत्रमें वर्णित परिस्थिति उत्तरीय ध्रुवकी स्पष्ट दीखती है।

नौ महिनोंका वा दस महिनोंका यज्ञ करनेवाले ये दोनों गाढ अन्धकारको छोडकर शेष प्रकाश शुरू होते ही यज्ञ करते हैं। इसलिये नौ या दस महिनोंका यज्ञ होता है। भारत वर्षमें इस तरहकी परिस्थिति नहीं है। वहां न बहुत उषाएं साथ

साथ आती है और न नौ या दस महिनोका प्रकाश ही मिलता है। नौ या दस महिनोंका हिसाब ऐसा होता है। ६ महिने सूर्य ऊपर रहनेके, एक मास सूर्योदयके पूर्वका उषःकाल, एक मास सूर्यास्तके पश्चात्का सायंकाल मिलकर आठ महिने हुए। एक या दो महिने उषःकालके पूर्व और सायंकालके पश्चात्के किंचित् प्रकाशको समझ लीजिये। इसके पश्चात्के दो तीन मास गाढ अन्धकारके होते हैं। ' दीर्घतमः ' ऐसा जो वर्णन है वह इस रात्रीका वर्णन है। हमारे देशकी रात्रीका ऐसा ' दीर्घतम ' शब्दोंसे नहीं हो सकता। जहा ६ मास सूर्य दर्शन नहीं होता वहीं ' दीर्घतमः ' कहा जा सकता है।

९६ **हे देवीः उषसः ! यूयं हि ऋतयुग्भिः अश्वैः भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ। ससन्तं द्विपात् चतुष्पाद् जीवं चरथाय प्रबोधयन्तीः**— हे दिव्य उषाओ ! तुम उत्तम घोडोंके साथ चलनेवाले रथोंसे सब भुवनोंको व्यापती है और सोनेवाले द्विपाद् चतुष्पाद् प्राणियोंको घूमनेके लिये जगाती हैं। अर्थात् गाढ अन्धकारके समय घरके द्वार बंद रहते हैं, हिंस्र प्राणी घूमते हैं, चोर डाकू घूमते हैं। इसलिये इस घने अन्धकारमें गोशालाके द्वार बंद रहते हैं। इस मंत्रका वर्णन तो हमारे स्थानमें भी सत्य हो सकता है क्योंकि शामको गौवें गोशालामें बंद रहती हैं और सबेरे उषःकालमें गोशालाके द्वार खोले जाते हैं और चरनेके लिये गौवें बाहर छोडी जाती हैं।

९७ अनेक उषाएं आनेपर उनमेंसे पुराणी और नयी पहचानना कठिन होता है, क्योंकि सब उषाएं एक जैसी दीखती हैं। उत्तरीय ध्रुवमें अनेक उषाएं एक साथ क्रमपूर्वक आती हैं, पर उसमें उषः प्रकाशका उदय और अस्त होता है। उदय अधिक प्रकाश और अस्त ऐसा क्रम होता है और प्रति २४ घण्टोंके प्रतिदिनमें प्रकाशका समय बढता जाता है और इस तरह करीब करीब डेढ मास तक होता रहता है।

९८ **ताः अभिद्युम्नाः ऋतजातसत्याः भद्राः उषसः पुरा आसुः**— वे तेजस्वी सत्ययज्ञप्रवर्तक अनेक उषाएं पूर्व समयमें आचुकी हैं। ' **यासु ईजानः स्तुवन् शंसन् सद्यः द्रविणं आप** '— जिन उषाओंमें यज्ञ करनेवाला स्तुति करता हुआ यज्ञ करनेके कारण पर्याप्त धन प्राप्त करता है।

इस मंत्रमें कहा है कि (उषसः पुरा आसुः) अनेक उषाएं पहिले आचुकी हैं। यह कथन इस देशमें भारतमें सार्थ नहीं हो सकता। क्योंकि अनेक उषाओंका पहिले आना और पश्चात् उषाओंका न होना यहां नहीं होता है। यहां तो सबेरे एक ही उषा आती है, पश्चात् दिन आता है। लगातार अनेक उषाएं आतीं रहेंगी ऐसी संभावना यहा नहीं है। इसलिये यह वर्णन उत्तरीय ध्रुवका ही वर्णन है ऐसा प्रतीत होता है।

उषःकाल अनेक आये और (यासु ईजानः) उनमें लोग यज्ञ भी करने लगे। क्योंकि नौ अथवा दस मास क्रमपूर्वक यज्ञ करनेवाले लोग उषःकाल दीखते ही यज्ञ शुरू करते हैं और नौ या दस मासतक यज्ञ करते ही रहते हैं। जिनको ' नवग्व अथवा दशग्व ' कहते हैं। जितने दिन सूर्य किरण दीखते हैं उतने दिन ये यज्ञ होते हैं।

९९ **ताः समनाः उषसः पुरस्तात् प्रप्रथानाः ऋतस्य सदसः बुधानाः जरन्ते**— वे एक मनसे आनेवाली उषाएं पूर्व दिशासे फैलती हैं और यज्ञके स्थानको बताती हैं।

यहां उषाओंके विशेषणोंमें ' **समनाः समानतः** ' ये पद हैं। साथ साथ समान रूपसे आनेवाली यह इनका अर्थ स्पष्ट है।

१०० **ताः उषसः अमीतवर्णाः, अभ्वं असितं गूहन्तीः, रुशद्भिः तनूभिः शुक्राः शुचयः रुचानाः चरन्ति**— वे ये उषाएं अनेक रंगोवाली, अन्धकारको ढंककर प्रकाशको फैलती, अपने तेजस्वी शरीरोंसे शुद्ध पवित्र और तेजस्वी होकर विश्वमें संचार करती हैं। यह उषःकालका सुंदर वर्णन है।

१०१ हे स्वर्ग कन्याओ ! तेजस्वी देवियाँ तुम हमारे लिये पुत्रपौत्रोंको बढानेवाला धन दे दो। अर्थात् हमें ऐसा धन चाहिये कि जो प्राप्त होनेके बाद उत्तम पुत्र पौत्र हमें हों। हम ज्ञानी और सुखी हों और उत्तम वीर्यके कार्य उत्तम रीतिसे सिद्ध करनेवाले हों। धन प्राप्त होनेके बाद हमारे अन्दर आलस्य न आ जाय और हम कार्य सिद्ध करनेमें शिथिल न हों। हम उत्साहसे उत्तम वीरताके कार्य करें।

१०२ हे स्वर्गकन्या उषाओ ! तुम प्रकाश फैला रही है। इसलिये मैं तुमसे एक यह प्रार्थना करता हूं कि हम लोग विजयी यशस्वी और कीर्तिमान हों। ऐसा बननेमें द्यु और पृथिवी हमारी सहायता करे॥

१०३ यह स्वर्गीय कन्या उषा (स्वसुः परि व्युच्छन्ती) अपनी बहिन रात्रीके अन्तिम भागमें प्रकाश करती है और